# जैसे भाव–वैसा भविष्य

– राजकुमार शास्त्री, द्रोणगिरि

Created by Universal Document Converter

# लेखक द्वारा लिखित प्रकाशित साहित्य

Created by Universal Document Converter

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 41वाँ पुष्प

# जैसे भाव-वैसा भविष्य

लेखक

**राजकुमार शास्त्री**

प्रकाशक

समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)

मो. 91 9414103492

Created by Universal Document Converter

**प्रथम संस्करण** : 1000 प्रतियाँ
[ प्रकाशन तिथि फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा (अष्टाह्निका पर्व, 17 से 24 मार्च 2024) वीर निर्वाण संवत् 2050 ]

**प्राप्ति स्थान** : **शाश्वतधाम, उदयपुर ( राज. ),**
मो. 91-9414103492
: **श्री दिनेश शास्त्री, जयपुर**
मो. 91-9928517346

**साहित्य प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 40/-**

**मुद्रक** : देशना कम्प्यूटर्स
82, पॉल्ट्री फार्म, आगरा रोड, जयपुर
मो. 9928517346

## प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

| | |
|---|---|
| 1. डॉक्टर ममता जैन-श्रीमती निष्ठा जैन, उदयपुर | 6000/- |
| 2. श्री विमल कुमार, मनीष कुमार अजमेरा, भीलवाड़ा | 2100/- |
| 3. श्रीमती रतनमाला जैन, अलवर | 2100/- |
| 4. श्री अखिलेश जैन ए.डी.एम. | 1100/- |
| 5. श्री निर्मल जैन, सीमेंट फैक्ट्री, उदयपुर | 1100/- |
| 6. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर | 1000/- |
| 7. श्री नेमिचन्द चंपालाल भोरावत चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर | 1000/- |
| 8. गुप्तदान, उदयपुर | 1000/- |
| 9. श्री गोपाल पाटनी, पटना | 700/- |
| 10. स्वराज परिवार | 700/- |
| 11. ऑनलाइन जैन पाठशाला, इन्दौर | 500/- |
| 12. श्रीमती दीपिका जैन, ग्वालियर | 500/- |
| 13. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, लखनऊ | 500/- |
| 14. पण्डित अमित 'अरिहंत', भोपाल | 250/- |

Created by Universal Document Converter

# प्रकाशकीय

‘**समर्पण**’ द्वारा आठ वर्ष की अल्पावधि व सीमित साधन होने पर भी आप सबके असीमित स्नेह से 40 पुष्पों की लगभग 70 हजार प्रतियाँ प्रकाशित कर समाज के समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी हैं।

राजकुमार शास्त्री द्वारा तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अधिकार के आधार से लिखित लेखों का संग्रह 41वाँ पुष्प ‘**जैसे भाव-वैसा भविष्य**’ स्वाध्याय हेतु प्रस्तुत है। अभी तक हमारे द्वारा प्रकाशित सभी साहित्य को पाठकों ने हृदय से सराहा है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हमें पुस्तक प्रकाशन के पूर्व ही अर्थ सहयोग प्राप्त हो जाता है। अत: बाद में हम ‘**जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ**’ की भावना से पाठक को साहित्य उपलब्ध कराते हैं, इसमें जो राशि आती है, उसे अन्य प्रकाशन में आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं।

‘**जैसे भाव-वैसा भविष्य**’ पुस्तक सर्व सामान्य द्वारा पठनीय ही नहीं, स्वाध्याय से दूर रहने वाले सहृदय व्यक्तियों तक पहुँचाने योग्य भी है।

पुस्तक के सुन्दर मुद्रण के लिए श्री दिनेश शास्त्री (देशना कम्प्यूटर्स) जयपुर, अर्थ सहयोग हेतु अन्य साधर्मियों का भी आभार।

लेखन/मुद्रण में किसी भी प्रकार की त्रुटि हो तो कृपया हमें अवगत करायें, जिससे कि भविष्य में ध्यान रखा जा सके।

अब आपके हाथों में है – ‘**जैसे भाव, वैसा भविष्य**’।

निवेदक – **समर्पण परिवार**

मो. 9414103492

**बान्धवमध्येऽपि जनो दुःखानि समेति पापपाकेन।**
**पुण्येन वैरिसदनं यातोऽपि न मुच्यते सौख्यैः॥**

पाप कर्म के उदय से मनुष्य बन्धु-बाँधवों के मध्य में रहते हुए भी दु:ख भोगता है और पुण्य कर्म के उदय से शत्रु के घर में रहकर भी सुख भोगता है। – ‘**सुभाषितरत्नसंदोह**’ **से साभार**

Created by Universal Document Converter

# समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

**देव-धर्म-गुरु के चरणों में, तन-मन-धन सब अर्पण।**
**आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।**

| **ट्रस्ट का नाम** - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट | **स्थापना तिथि** - 20 सितम्बर 2014 |
|---|---|

## ट्रस्ट मण्डल

**संरक्षक :** 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 3. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 4. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

**अध्यक्ष** - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** - अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** - रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **महामंत्री** - डॉ. महेश जैन भोपाल, **मंत्री** - पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** - पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया मंगलायतन, डॉ. ममता जैन उदयपुर, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, रतनचन्द शास्त्री भोपाल, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा।

**ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा** - **उद्देश्य :** 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. शिक्षा व चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक मार्गदर्शन, सहयोग एवं कार्य करना।

**गतिविधि** - **1. साहित्य प्रकाशन** - अभी तक 37 पुस्तकों का प्रकाशन, **2. संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, **3. सुखायतन** - सुखार्थी साधर्मियों के लिए द्रोणगिरि में नि:शुल्क-सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था। **4. 'प्रयास'** - जैन समाज के युवा वर्ग को धार्मिक संस्कारों के साथ प्रशासनिक/सी.ए./नीट/आई.आई.टी. इत्यादि की तैयारी करने हेतु व्यवस्था। **5. साधर्मी वात्सल्य योजना** - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना। **6. धरोहर** - नैतिक/धार्मिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार हेतु नई शिक्षा नीति के अनुसार धरोहर पुस्तकों का प्रकाशन। **7. सर्वार्थसिद्धि** - भोपाल में बालिकाओं को शास्त्री करने वाले महाविद्यालय का 2024 में शुभारंभ।

Created by Universal Document Converter

# अंतर्मन

हम सब समाज के बीच में रहते हैं वहाँ हमारे जीवन में सामान्यत: शारीरिक, पारिवारिक, व्यावसायिक, मानसिक विविध प्रकार की परिस्थितियाँ बनती हैं। अनेक व्यक्तियों की आर्थिक/शारीरिक/व्यापारिक परिस्थितियों को देखने का अवसर मिलता है जिनमें बहुत उतार-चढ़ाव और विविधताएँ होती हैं। जिन्हें देखकर सामान्य जन के मन में विचार आता है कि आखिर ऐसा क्यों होता है? और जो कार्य पसन्द नहीं आता उसे दूर करने के लिए, जो पसन्द आता है उसे बनाए रखने के लिए अनेक प्रकार के मिथ्या उपाय भी करते हैं, पर सफलता न मिलने पर तनाव/चिंता बढ़ती ही है।

तत्त्वार्थसूत्रजी के छठवें अधिकार के आधार से जब आठ कर्मों के कार्यों व उनके आस्रव के कारणों का अवलोकन किया तब मन में विचार आया कि यदि इस विषय को सरलता पूर्वक सामान्य जन के बीच रखा जाए तो हमें परिणाम को संभालने, अनर्थ के चिंतन से हटने, दुराचारों से बचने में निश्चित ही सहयोग प्राप्त होगा।

इसी विचार से मैंने दो-तीन बार दसलक्षण पर्व में स्वाध्याय का विषय भी तत्त्वार्थसूत्रजी के छठवें अधिकार को बनाया। फिर इस विषय पर लिखने का मन हुआ अत: 'जैसे भाव-वैसा भविष्य' नाम से संस्कार सुधा में लेख माला प्रकाशित की, जो पूर्ण होकर पुस्तकाकर आपके हाथों में आ रही है।

इस पुस्तक में मैंने आगम के मूल सूत्रों, परिभाषाओं, शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, केवल सामान्य जन अपनी परिस्थितियों, उनके निमित्तभूत कर्म और उन कर्मों के आस्रव/आने के कारणों को समझ सकें इसके लिए न तो अधिक विस्तार और न अधिक संक्षेप, मध्यममार्ग अपनाते हुए लिखा है। जीवन में जो कुछ भी घटित होते देखा है, जो मेरे अनुभव में आया है उसे छोटे-छोटे वाक्यों के माध्यम से पिरोया है। आगम के आधार से हम किस तरह की चिंतन धारा द्वारा विपरीत परिस्थितियों से बच सकते हैं और धर्म मार्ग में लगने योग्य अनुकूल परिस्थितियों को प्राप्त कर सकते हैं - यह लिखने का प्रयास किया गया है।

इस लेखन में तत्त्वार्थसूत्रजी का छठवाँ अधिकार तो मुख्य स्रोत है ही, साथ

Created by Universal Document Converter

ही पण्डित टेकचंदजी द्वारा लिखित 'सुदृष्टि तरंगिणी', पण्डित नेमीचन्दजी द्वारा लिखित 'जैसी मति वैसी गति' को भी आधार बनाया गया है। प्रबुद्ध पाठकों से निवेदन है कि यदि आगम के प्रतिकूल कोई भी वाक्य हो तो मुझे अवश्य ही बतलाएँ जिससे कि परिमार्जन किया जा सके।

आदरणीय छोटे दादा डॉ. हुकुमचंदजी भारिल्ल ने अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव में इस बात पर बार-बार जोर दिया कि 'जैसा भविष्य, वैसे भाव' होंगे। इस तरह उन्होंने पर्याय मात्र के कर्तृत्व का बोझ टालने का संदेश दिया, भावों को संभालने का भार भी उतार कर फैंकने के लिए प्रेरणा दी। जब मैं तत्त्वार्थ-सूत्रजी के माध्यम से 'जैसे भाव-वैसा भविष्य' लिख रहा था तो मन में बार-बार आता था कि आदरणीय दादा ने तो हमारे लिए इससे अलग हटकर सन्देश दिया है जो एक आत्मार्थी को निर्भार होने के लिए निश्चित ही अनुकरणीय है। 'जैसा भविष्य वैसा भाव' इस सिद्धान्त के अनुकरण करने पर भाव भी व्यवस्थित ही होंगे, स्वच्छंदता, उच्छृंखलता के विचार नहीं हो सकते।

इस सम्बन्ध में आदरणीय अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली से मार्गदर्शन प्राप्त कर परिशिष्ट के रूप में मैंने 'जैसा भविष्य- वैसे भाव' को भी पाठकों के लाभार्थ लिखा है।

पिछले दो-तीन माह में आचार्य अमितगति द्वारा रचित 'सुभाषितरत्नसंदोह' नामक ग्रंथ का स्वाध्याय किया उसमें 'दैवनिरूपण द्वात्रिंशतिका अध्याय' में बाह्य परिस्थितियाँ सब दैव/भाग्य/कर्माधीन है इस संबंध में बहुत मार्मिक विवेचन किया है। सामान्य पाठकों को वह भी प्रेरक हो सकता है अतः परिशिष्ट दो में उस अधिकार के कुछ अंशों को सम्मिलित किया है।

सभी पाठकों से निवेदन है कि स्याद्वादमयी जिनवाणी को स्याद्वाद शैली से ही समझें। किसी भी प्रकार के एकान्त का दुराग्रह हमें जिनागम से दूर ही रखेगा।

'जैसे भाव वैसा भविष्य या जैसा भविष्य वैसे भाव', 'जैसी मति-वैसी गति अथवा जैसी गति-वैसी मति' इन सब कथनों को स्याद्वाद शैली से समझ कर आत्महित के मार्ग में हम लग सकें - इसी मंगल भावना के साथ आपके हाथों में है '**जैसे भाव-वैसा भविष्य।**'

- **राजकुमार शास्त्री**

7 मार्च 2024

Created by Universal Document Converter

## 1

**प्र**त्येक व्यक्ति को अपना भविष्य जानने की जिज्ञासा होती है – इसी मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए समाचार–पत्रों, टेलीविजन के चैनलों पर ज्योतिष संबंधी कार्यक्रम आते हैं, जिनमें कहीं प्रश्नोत्तर के माध्यम से तो कहीं राशिफल के आधार से भविष्य बताया करते हैं और लोग बहुत ही उत्साह से पढ़ते/सुनते रहते हैं। लोगों की इसी मनोवृत्ति के कारण देश में झोला–छाप डॉक्टरों की तरह छोटे–मोटे ज्योतिषी तो स्पेशलिस्ट डॉक्टरों की तरह बड़े–बड़े ज्योतिषाचार्य अपने ज्ञान व वक्तृत्व कला द्वारा दूसरों का भविष्य बताकर, अपना उज्ज्वल भविष्य बनाते रहते हैं, अपने ग्राहक की इच्छानुसार भविष्य को बदलने की बात कहकर वे अपना भविष्य तो अवश्य ही बदल लेते हैं। जबकि सच में समाचार–पत्रों में बताए गए राशिफल का हाल तो यह है कि –

मैंने रविवार को पढ़ा कि तुला राशि वालों को इस सप्ताह धन लाभ होने वाला है तो मैं धन प्राप्ति की आशा में खुश हो गया। क्रमशः सप्ताह बीत गया; परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अगले रविवार को पुनः राशिफल पढ़ा, लिखा था कि तुला राशि वालों के लिए इस सप्ताह बहुत अधिक लाभ होने वाला है। तब मैंने विचार किया कि हो सकता है कि दोनों सप्ताह का लाभ एक साथ ही हो जाए और इस आशा में एक–एक दिन व्यतीत करता रहा; परन्तु कहीं से भी लक्ष्मी देवी का आगमन नहीं हुआ। किंचित् उदासी के साथ तीसरे सप्ताह रविवार को जैसे ही समाचार–पत्र खोलकर राशिफल के पृष्ठ पर पहुँचा और अपने राशिफल को देखा, लिखा हुआ था कि 'दो सप्ताह से कोई आपको बेवकूफ बना रहा है।'

यह पढ़कर लगा कि कुछ भी कहो, राशिफल कभी–कभी सच भी

Created by Universal Document Converter

होता है। जो लोग यह कहा करते हैं कि समाचार-पत्रों या दूरदर्शन में जो राशिफल बताए जाते हैं, वे हमेशा गलत ही निकलते हैं - आज के राशिफल ने उनकी बात को झुठला दिया।

यह बात तो जो व्यवसायिक दृष्टि से ज्योतिष का विकृतरूप हम सबके बीच में प्रचलित हो रहा है उसकी हुई; परन्तु सच इतना ही नहीं है। हम इस लेखमाला के आधार से उस ज्योतिष को समझने का प्रयास करेंगे जो ज्योतिष शत-प्रतिशत सत्य है। जो ज्योतिष यह बतलाती है कि 'जैसे भाव-वैसे भव', 'जैसे भाव-वैसा भविष्य' अथवा 'जैसी मति वैसी गति' या 'जैसी करनी-वैसी भरनी' इसे टालने में कोई समर्थ नहीं है।

उक्त व्यवस्था को बतलाने वाला सर्वज्ञ परमात्मा द्वारा उद्घाटित ज्योतिष अर्थात् भाव और उनका फल समझने के लिए हम प्रस्तुत हो रहे हैं। किसी कवि ने कहा है -

**परिणति सब जीवन की तीन भांति वरनी।**
**एक पुण्य एक पाप, एक राग हरनी।**
**तामें शुभ-अशुभ अंध, दोय करें कर्म बंध।**
**वीतराग परिणति ही, भव समुद्र तरनी।।**

अर्थात् प्रत्येक जीव की परिणति/भाव तीन प्रकार के कहे गए हैं। अशुभभाव जिन्हें पापभाव भी कहते हैं, शुभभाव जिन्हें पुण्यभाव भी कहते हैं और शुद्धभाव जिसे वीतरागता अथवा धर्म भाव भी कहते हैं। इन तीन परिणतियों में से शुभ और अशुभ तो कर्म बंधन करने वाली हैं और एकमात्र वीतराग परिणति/शुद्ध परिणति ही भव समुद्र से पार उतारने वाली है।

जिस प्रकार हस्तरेखा वाले सामान्यतया बताया करते हैं कि हमारे

Created by Universal Document Converter

हाथ में एक आयु की रेखा है, एक ज्ञान की रेखा है, एक यश की रेखा है। इसी प्रकार मान लीजिए कि हमारे परिणामों की भी तीन रेखाएँ हैं – अशुभ भाव की रेखा, जिसके बड़े होने पर सामान्यतया नरक गति-तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है। शुभ भावों की रेखा, जिसके बड़े होने पर सामान्यतया मनुष्य-देवगति की प्राप्ति होती है और तीसरी वीतराग परिणति/शुद्धभाव की रेखा। जिनके जीवन में शुद्ध की रेखा प्रकट हो जाती है, पूर्णता को प्राप्त होती है, उनको मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, वे भव समुद्र से तिर जाते हैं।

यह ज्योतिष शत-प्रतिशत सत्य है। इसे कभी भी, कहीं भी बदला नहीं जा सकता।

अब विचारने योग्य है कि मेरे जीवन में इन तीन रेखाओं में से कौन-सी रेखा है? और कौन-सी रेखा निरंतर वृद्धिंगत हो रही है?

जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि शुद्ध भाव/वीतरागतारूप परिणति तो हमारे जीवन में है ही नहीं। हमारे भावों में अभी वीतरागता की रेखा प्रारम्भ ही नहीं हुई है तो फिर पूर्ण होने की तो बात ही कहाँ है और जब शुद्धभाव अर्थात् वीतरागता की रेखा ही नहीं है तो उस वीतरागता से प्राप्त होने वाला जो मोक्ष रूपी फल है, वह भी कैसे प्राप्त होगा?

यह भी ध्यान रखने योग्य है कि हम भले ही कितना ही 'मोक्षफलप्राप्तये फलं, अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं' समर्पित करते रहें और इंतजार करते रहें कि अब मुझे मोक्षफल प्राप्त होगा, अनर्घ्यपद प्राप्त होगा; परन्तु इस प्रकरण से तो स्पष्ट हो रहा है कि यदि मोक्षफल अथवा अर्घ्य समर्पित करते हुए शुभ भाव होंगे तो पुण्य का बंध होगा और मनुष्य/देव गति की प्राप्ति होगी – मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी; क्योंकि यह शुभभाव भी बंध का ही कारण है।

Created by Universal Document Converter

अत: विचारणीय यह रह जाता है कि हमारे जीवन में पुण्य कितना है और पाप कितना है? मेरे जीवन में शुभभाव की रेखा बड़ी हो रही है अथवा अशुभ भाव की रेखा बड़ी हो रही है? एक गीतकार ने लिखा है –

**'मुखड़ा देख ले प्राणी जरा दर्पण में।**
**देख ले कितना पुण्य है, कितना पाप तेरे जीवन में?**
**देख ले दर्पण में'**

इस गीत में यही बात कही गयी है कि हे भाई! तुम अपने ज्ञान रूपी दर्पण में देखो कि तुम्हारे जीवन में पुण्य कितना चल रहा है और पाप कितना चल रहा है? हम जड़ दर्पण के सामने खड़े होकर अपने चेहरे को तो देखते हैं, अपने चेहरे पर लगी हुई कालिमा/मैल को साफ करते हैं; परन्तु बड़ी विडंबना है कि हम अपने भावों रूपी चेहरे को ज्ञान रूपी दर्पण में नहीं देखते। यदि सच में हम ज्ञान रूपी दर्पण में अपने भावों को देखें तो 'मेरा भविष्य क्या है? मेरा भव क्या होगा?' – यह किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं होगी बल्कि हम स्वयं अपना भविष्य अथवा भव जान सकेंगे।

❀❀❀

**पुरुषस्य भाग्यसमये पतितो वज्रोऽपि जायते कुसुमम्।**
**कुसुममपि भाग्यविरहे वज्रादपि निष्ठुरं भवति।।**

जब पुरुष का भाग्योदय होता है तो वज्रपात भी फूल बन जाता है और भाग्य के अभाव में फूल भी वज्र से कठोर हो जाता है।

– **'सुभाषितरत्नसंदोह' से साभार**

Created by Universal Document Converter

# 2

यदि किसी भी व्यक्ति से अशुभ और शुभ भावों के बारे में कहा जाए तो अधिकतर लोगों का यही विचार रहता है कि हमें अशुभ भाव तो होते ही नहीं हैं। अनेक युवा तो यह भी कहते हैं कि "जो पाप करते हैं वे मन्दिर जाएं, हम तो कोई पाप करते ही नहीं हैं; क्योंकि न हम किसी की हत्या करते हैं, न हम किसी से झूठ बोलते हैं, न किसी दूसरे की वस्तु उठाते हैं, किसी लड़के-लड़की को छेड़ते नहीं हैं, परिग्रह का भी हमें ज्यादा मोह नहीं है; इस तरह हम कोई पाप नहीं करते तो हम क्यों धर्म कार्य करें ? अशुभ भाव नहीं करते तो शुभ भाव करने की बात कहाँ हुई ? हमारा तो निरन्तर शुभभाव चल ही रहा है।"

यह विचारधारा सही नहीं है। हमें शान्ति से विचार करना होगा कि हम 24 घंटे जो कार्य करते हैं और उन कार्यों के पीछे हमारे जो भाव होते हैं क्या वे शुभ भाव हैं ? जैसे –

प्रात:काल उठना, उठकर मंजन करना, नहाना, कपड़े धोना, चाय-दूध पीना, नाश्ता करना, अखबार पढ़ना, टेलीविजन देखना, श्रृंगार करके कार्यालय या दुकान या फैक्ट्री जाना, वहाँ कैसे धनार्जन किया जाए इसके लिए ही निरन्तर विचार करना, उसी के लिए मीटिंग करना, मिलावट अथवा बेईमानी के कार्य करना, कर की चोरी करना, रात्रि भोजन करना, अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करना, रात्रि में वैवाहिक/जन्मदिन/वर्षगांठ आदि के भोजों पर आमंत्रित करके सैकड़ों-हजारों लोगों को खिलाना, दूसरों के यहाँ पार्टियों में जाकर रात्रि भोजन करना, पिक्चर देखना और अभिनेताओं को देखकर उन जैसा ही बनने की भावनाएँ भाना, नाच-गाना देखना, व्हाट्सएप चलाना, फेसबुक चलाना,

Created by Universal Document Converter

उन पर तरह-तरह के मनोरंजक चुटकुले आदि पढ़ते रहना, व्यर्थ में लाइट, पंखा चलाना, गीजर आदि का प्रयोग करना, होटलों में खाना, जिन मन्दिर नहीं जाना, छानकर पानी काम में नहीं लेना, श्रावकाचार का पालन नहीं करना, मन्दिर में जाकर पूजन नहीं करना, तीर्थयात्रा नहीं करना, बड़ों का सम्मान नहीं करना, तीर्थों पर जाकर केवल खाने-पीने या मनोरंजन की चर्चाएँ करना, मन्दिर जाकर भी कषाय भाव करना, संस्थाओं में पदाधिकारी बनकर एकाधिकार करना, संस्थाओं की सार्वजनिक सामग्री का व्यक्तिगत जीवन में उपयोग करना, धार्मिक संस्थाओं में भी राजनीति करना, सभी साधन उपलब्ध होते हुए भी जिन्हें आवश्यकता है उनकी शिक्षा-चिकित्सा आदि कार्यों में सहायता नहीं करना, परिवार के सदस्यों की संपत्ति पर कब्जा करना, परिवार के बड़ों को योग्य सम्मान न देकर उनका अपमान करना - इत्यादि कार्य युवा-युवती, बालक-वृद्ध सभी कर रहे हैं और यह भी विचार चल रहा है कि हमारे जीवन में पाप नहीं है; हम मन्दिर क्यों जाएं ? हम स्वाध्याय क्यों करें ? हम पंच परमेष्ठी की आराधना क्यों करें ? हमने पैसा कमाया है हम क्यों दान दें ? - इस प्रकार के भावों को क्या शुभ भाव कहेंगे ?

सच में ये सभी और इन जैसे ही अन्य कार्य/भाव, अशुभ कार्य/अशुभ भाव हैं, पाप भाव हैं इनसे पाप का ही बंधन होगा और नरक, तिर्यंच गति की ही प्राप्ति होगी।

आप मांस-अंडा-शराब का सेवन, व्यभिचार, जुआ खेलने आदि रूप बहुत स्थूल पाप न कर रहे हों तो नरक भले ही न जाएं, पर पूर्वोक्त भावों के फल में पशु-पक्षी बनकर जीवन व्यतीत करना होगा। हमारे भाव हमारे भव का निर्धारण करेंगे।

Created by Universal Document Converter

हम अशुभ भाव या पाप भाव को अपनी अल्प मति से निश्चित मर्यादा तक ही न समझें। जो भी भाव हमें धर्म से दूर ले जाते हैं, देव-शास्त्र-गुरु से दूर ले जाते हैं, तत्त्वज्ञान से दूर ले जाते हैं, आत्म-चिंतन से दूर ले जाते हैं, वे सभी भाव पाप भाव हैं। जिनके कारण हमारे हृदय में क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य, रति इत्यादि भाव जागृत होते हैं, वे सभी कार्य व भाव अशुभ हैं, पाप बंध के कारण हैं और हमारे लिए दुःखमय हैं। जो दुःख के कारण हैं, उन्हें ही पाप कहा जाता है।

उक्त भावों के अतिरिक्त वीतराग देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करना, स्वाध्याय करना, संयमित जीवन जीना, तीर्थयात्रा करना, तत्त्व प्रचार-प्रसार में अपने मन-वचन-काय को लगाना, साधर्मी वात्सल्य भाव होना, धर्म प्रभावना की भावना होना, मन्दिर-स्वाध्याय भवन आदि के निर्माण कार्य के लिए मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से कार्य करना, जिन धर्म की प्रभावना हेतु निरन्तर उत्साहित रहना, बुरे कार्यों से बचना, बुरे कार्यों से दूसरों को बचाने की भावना होना, बड़ों का सम्मान करना, जिनवाणी का पठन-पाठन, प्रकाशन, वितरण करने की भावना होना, शिविर लगाना, शिविरों में जाना, तीर्थयात्रा करना-कराना, अन्य को भी इन कार्यों के लिए प्रेरित करना, दया भाव से छानकर पानी का उपयोग करना, रात्रि भोजन नहीं करना, जमींकंद आदि का त्याग करना, अष्ट मूलगुणों का पालन करना, गृहस्थी के योग्य अणुव्रतों का पालन करना, बड़ों का सम्मान करना, अयोग्य आचरण नहीं करना, अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करना, पारिवारिक/सामाजिक योग्य कर्तव्यों का पालन करना इत्यादि भाव शुभ भाव हैं।

सच में विचार करना चाहिए कि मेरे जीवन रूपी हाथ में उक्त भावों

Created by Universal Document Converter

में से कौन से भाव की रेखा लंबी हो रही है? हम 24 घंटे किन भावों की रेखा को बड़ी कर रहे हैं? यदि यह सब विचार किया जाएगा तो हमारी नींद उड़ सकती है कि "अरे! सच में हमारे जीवन में अशुभ भाव की रेखा बहुत लंबी है। हम अशुभ भावों को करते ही नहीं हैं, बल्कि उनकी सुरक्षा करते हैं।"

क्या विचित्रता है! पाप भाव करते हैं, पुण्य का फल चाहते हैं और धर्म समझते हैं। हम अपने भावों की पहचान करें; क्योंकि हमारे भाव ही हमारे भविष्य के निर्माता हैं।

अभी हमने सामान्य रूप से शुभ-अशुभ भावों की चर्चा करते हुए उनके फल की बात की है। अब हमारी जो परिस्थितियाँ/मनःस्थितियाँ हैं, उन सबके कारणों की चर्चा विस्तार से करेंगे।

❀❀❀

**यदनीतिमतां लक्ष्मीर्यदपथ्यनिषेविणां च कल्यत्वम्।**
**अनुमीयते विधातुः स्वेच्छाकारित्वमेतेन॥**

लोक में देखा जाता है कि जो अन्याय करते हैं उनके पास लक्ष्मी आती है और जो अपथ्य का सेवन करते हैं वे रोगी न होकर नीरोग रहते हैं; इससे अनुमान होता है कि विधाता (कर्म) बड़ा स्वेच्छाचारी है, उसके मन में जो आता है सो कर डालता है।

– **'सुभाषितरत्नसंदोह' से साभार**

Created by Universal Document Converter

# 3

**सं**सार में सभी जीवों की परिस्थिति, मनःस्थिति, व्यवस्थाएँ, सुविधाएँ, असुविधाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की दिखाई देती हैं। जीवन में साधन सामग्री, पद-प्रतिष्ठा, लाभ-हानि, यश-अपयश जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह सब अपने कर्मोदय से ही प्राप्त होता है।

जो भी शरीर, मकान, रुपया, सोना-चाँदी, परिवार आदि समस्त बाह्य सामग्री प्राप्त होती है वह नोकर्म कहलाती है। इन नोकर्मों के कारण ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के द्रव्य कर्म हैं। इन द्रव्य कर्मों के आने और बँधने में कारण जीव के मोह-राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, ईर्ष्या इत्यादि अनेक प्रकार के भाव हैं जिन्हें भाव कर्म कहा जाता है।

अनादिकाल से ही हम मोह-राग-द्वेष आदि भाव, जिनका विस्तार हम पूर्व में अशुभ भाव और शुभ भाव के रूप में पढ़ चुके हैं, अनेक प्रकार से करते हैं। उन भाव कर्मों से द्रव्य कर्मों का आस्रव-बंध होता है और उन कर्मों के उदय से हमें शरीर, धन, परिवार, मकान, गाड़ी, सोना-चाँदी, मन्दिर इत्यादि नोकर्म प्राप्त होते हैं और फिर जीव इन प्राप्त नोकर्मों में राग-द्वेष भाव करता है, फिर द्रव्य कर्मों का आस्रव-बंध होता है, फिर उन द्रव्य कर्मों से पुनः नोकर्म की प्राप्ति होती है, इस प्रकार अनादि काल से यह क्रम चला आ रहा है। इसी क्रम में यह नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति - इन चारों गतियों में जीव का परिभ्रमण हो रहा है।

जब अनादि काल से इस प्रकार की शृंखला चली आ रही है, तब फिर क्या यह अनन्त काल तक चलती रहेगी? क्या जीव इसी तरह चतुर्गति में अनन्त काल तक परिभ्रमण करता रहेगा? नहीं, ऐसा नहीं है।

Created by Universal Document Converter

इस परिभ्रमण का अभाव करके जीव सिद्ध दशा को प्राप्त कर, अनन्त काल के लिए सुखी भी हो सकता है।

तब फिर यह भावकर्म से द्रव्यकर्म, द्रव्यकर्म से नोकर्म और पुनः नोकर्म से भाव कर्म, भाव कर्म से द्रव्य कर्म की श्रृंखला कहाँ पर तोड़ी जा सकती है? हमें जो शरीर, मकान-दुकान, परिवार इत्यादि नोकर्म प्राप्त हुए हैं, इनमें हमारे द्वारा कुछ भी तोड़-फोड़ करना, कुछ भी परिवर्तन किया जाना संभव नहीं है। जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि द्रव्यकर्म अथवा जिन्हें संक्षेप में पुण्य-पाप अथवा कर्म या भाग्य कहते हैं, हम लेकर आए हैं अर्थात् पहले जो कर्म बाँध चुके हैं, उनमें भी कुछ भी परिवर्तन किया जाना संभव नहीं है; परन्तु इस श्रृंखला में एक भाव कर्म ही ऐसा है जहाँ हम यदि तत्त्वज्ञान के आधार पर, जो बाह्य में हमें साधन सामग्री प्राप्त हुई है, उसमें इष्ट-अनिष्ट की कल्पना न करके समता भाव जागृत करें, वस्तुस्वरूप को समझने का पुरुषार्थ करें, तो भावकर्म को मंद करते हुए, नष्ट किया जा सकता है। जितने-जितने अंशों में भाव कर्म कम होते जाएंगे, उतने-उतने अंशों में कर्मों की स्थिति अनुभाग घटते चले जायेंगे और तदनुसार नोकर्मों में भी परिवर्तन होते हुए धीरे-धीरे भाव कर्म बंद हो जाएंगे और संसार का अभाव हो सकता है।

वस्तुस्वरूप का ज्ञान न होने से हमें जो भी पदार्थ मिलते हैं, जो भी परिस्थितियाँ बनती हैं, जो भी व्यक्ति मिलते हैं, उनमें से 'किसी को अच्छा, किसी को बुरा, किसी को हटाओ, किसी को जुटाओ, किसी को बनाओ, किसी को बिगाड़ो' ये भाव आए बिना नहीं रहते। 'ये अच्छे हैं तो मेरे पास ही रहना चाहिए, ये बुरे हैं तो यहाँ से भागना चाहिए।' ये जो हटाने-मिटाने-जुटाने के भाव हैं, ये ही हमारे लिए दुःखद हैं। ये भाव ही हम में क्रोध-मान-माया-लोभ का रूप लेकर के प्रकट होते हैं। इन भावों से ही ईर्ष्या, डाह, तृष्णा, बैर, प्रतिस्पर्धा, इत्यादि के भाव

Created by Universal Document Converter

जागृत होते हैं, और इन्हीं से नये द्रव्य कर्म आकर बाह्य परिस्थितियों का निर्माण करते हैं।

वस्तुस्वरूप तो यह है कि -

**जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है।**
**अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है।।**

सच में जगत का कोई भी पदार्थ न अच्छा है, न बुरा है, न कोई परिस्थिति अच्छी या बुरी है, न कोई ऋतु अच्छी या बुरी है, न कोई स्थान अच्छा-बुरा है, न कोई खाद्य पदार्थ अच्छा-बुरा है। जो कुछ भी लाल-पीले-नीले, खट्टे-मीठे रूप में अथवा कोई जीव ज्ञानी-अज्ञानी आदि के रूप में परिणमित होता दिखाई दे रहा है, वह सब उसकी स्वतंत्रता से हो रहा है, वह मेरे लिए नहीं है, मेरे द्वारा नहीं है, अच्छा नहीं है, बुरा नहीं है। हम जब तत्त्वज्ञान करेंगे, वस्तुस्वरूप को समझेंगे तो फिर मोह-राग-द्वेष आदि भाव नहीं होंगे और जब मोह-राग-द्वेष आदि भाव कर्म नहीं होंगे तब ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मों का आस्रव-बंध नहीं होगा और ज्ञानावरणादि कर्म नहीं होंगे तो नवीन नोकर्मों की प्राप्ति नहीं होगी और नोकर्म शरीर आदि की प्राप्ति नहीं होगी, तभी अशरीरी सिद्ध परमात्मा बन सकेंगे ।

तत्त्व अभ्यास से ही हमें ज्ञात होता है कि हमें जो शरीर-धन-परिवार-व्यापार आदि की प्राप्ति हुई है, उसमें हम कुछ भी परिवर्तन नहीं कर सकते। उनमें परिवर्तन की भावना, दुर्भावना है, व्यर्थ का कर्तृत्व है जिसके कारण हम तनाव, आकुलता, चिंता, टेंशन, डिप्रेशन का जीवन जी रहे हैं।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि बाहर का कोई भी पदार्थ/व्यक्ति/स्थान हमारे लिए दुःख का कारण नहीं है। दुःख का कारण एकमात्र

Created by Universal Document Converter

हमारा राग-द्वेष और अज्ञान भाव है। अज्ञानता से हम अपने सुख-दुःख का कारण किसी और को मानकर उसे ही पास लाने, दूर करने का प्रयास करते रहते हैं और यह प्रयास निरर्थक ही है।

हमारी परिस्थिति का कारण कोई दूसरा नहीं है। हमारे जीवन में जो भी लाभ-हानि, यश-अपयश, रोग-नीरोग, रोजगार- बेरोजगार इत्यादि परिस्थितियाँ बन रही हैं, उनका कारण स्वयं के भाव हैं। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। यदि हमने पूर्व में किसी का अपमान-अपयश-हानि न की हो, न चाही हो तो वर्तमान में हमारी कभी भी हानि या अपमान नहीं हो सकता। हम बुरे भाव करके अच्छा फल चाहेंगे तो कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। जैसा कि कहा जाता है 'बोये पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय।' निश्चित ही हमें जो फल मिल रहा है, वह हमारे भावों का ही मिल रहा है। हमें अपने भावों की पहचान करनी होगी, उन्हें संभालना होगा अन्यथा हमारे भव और हमारा भविष्य बिगड़ता रहा है और बिगड़ता रहेगा।

राजा ऋषभदेव ने कृषि का उपदेश देते हुए प्रजाजन को बैलों के मुँह बंद करने का संदेश तो दिया; परन्तु समय पर मुँह खोलने का संदेश नहीं दिया, जिसके कारण बैल कुछ घंटे भोजन नहीं कर सके और उसका परिणाम यह आया कि जब राजा ऋषभदेव, मुनिराज ऋषभदेव बने तो 6 माह तक आहार की विधि ही नहीं मिली ।

राजा गुरुदत्त ने हस्तिनापुर में प्रजाजन की रक्षार्थ शेर को डराकर जंगल में भगाया और जिस गुफा में वह छुपा उसके द्वार को बंद करा कर आग लगा दी, जिससे शेर घुटकर अन्दर मर गया। इस कार्य के फल में मुनिराज गुरुदत्त के ऊपर कृषक ने आग लगाकर उपसर्ग किया।

सती अंजना ने जिन प्रतिमा का पूर्व भव में अपमान किया, फलस्वरूप उन्हें 22 वर्ष तक पति का वियोग सहन करना पड़ा।

Created by Universal Document Converter

सती सीता ने पूर्व भव में जिन मुनि और आर्यिका का अपलाप किया, उसी के फल में लोक में उनके शील पर लांछन लगा।

द्रोपदी ने वेश्या को अनेक पुरुषों में रमण करते हुए देखकर पूर्व में सुखी माना था। फलस्वरूप वह पंच भरतारी रूप में जानी गयीं।

सुकौशल मुनि के जीव ने अपनी भाभी को लात मारी थी जिसके कारण उस देव ने श्यालिनी के रूप में मुनि अवस्था में उन पर घोर उपसर्ग किया।

कौण्डेश ग्वाले ने मुनिराज को शास्त्र दान देकर ज्ञान की अनुमोदना की थी, जो कि भविष्य में चौरासी पाहुड़ रचने वाले भरत क्षेत्र के समर्थ आचार्य कुन्दकुन्ददेव के रूप में उनका क्षयोपशम विकसित करने में कारण बनें।

इस प्रकार पुराणों में ऐसे हजारों उदाहरण उपलब्ध हैं, जिनमें जिस जीव ने जो अच्छे-बुरे भाव किए, उनके अनुसार ही उसका प्रशंसनीय अथवा निंदनीय भविष्य बना। हम अपने भावों का परिष्कार कर अपने भविष्य के निर्माता स्वयं ही बन सकते हैं। हम अपनी वर्तमान मन:स्थिति के अनुसार ही भविष्य की परिस्थिति का निर्माण कर सकेंगे।

हम जाने-अनजाने अपनी मन:स्थिति तो विकृत करते जा रहे हैं लेकिन परिस्थिति सुन्दरतम चाहते हैं, पर सच में उसका फल क्या आएगा यह समझ नहीं पा रहे हैं। हम आगम के आलोक में अपने उन मनोभावों को पढ़ सकें और विकृत मनोभावों को सुधार कर अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकें क्योंकि हमारे भाव ही भविष्य के निर्माता हैं।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

# 4

**ह**म प्राय: देखते हैं कि किसी को गणित/विज्ञान/कम्प्यूटर जैसे विषय आसानी से समझ में आ जाते हैं, पर मातृभाषा हिन्दी पढ़ने समझने में दिक्कत आती है। एक अच्छे अध्यापक/प्रवचनकार द्वारा समझाए जाने पर भी सरल सा विषय समझ में नहीं आता। याद करना चाहते हैं पर याद नहीं होता। याद हो जाता है तो शीघ्र भूल जाते हैं। अहितकर, मिथ्या बातें याद रहती हैं; पर हितकर तत्त्व चर्चा समझ में ही नहीं आती या याद करते हुए भी याद नहीं रहती – ऐसा क्यों होता है?

किसी को बहुत अधिक नींद आती है, खड़े-खड़े, बैठे-बैठे नींद आ जाती है। प्रवचन सुनने की तीव्र भावना लेकर स्वाध्याय भवन में आते हैं। फिर भी प्रवचन में बैठते ही नींद आ जाती है, नींद में बोलते हैं, उठकर चलने लग जाते हैं इत्यादि कार्य क्यों होते हैं?

इन प्रश्नों के उत्तर में लौकिक दृष्टि से कोई चिकित्सक याददाश्त बढ़ाने के लिए दवाई खाने, ज्योतिषी अंगूठी पहनने, योगाचार्य ज्ञान मुद्रा, कपालभाति, अनुलोम-विलोम, प्राणायाम व ध्यान करने की बात करेगा; परन्तु हमारे जैन ज्योतिषाचार्य तो कहते हैं कि ये सब तो बहिरंग कारण हैं यदि अंतरंग कारण नहीं सुधारा गया तो बाहर की दवा और दुआ कुछ भी काम नहीं कर सकते और यदि अंतरंग कारण व्यवस्थित हुआ तो बहिरंग कारण हो या कदाचित् न भी हो तो भी कार्य की सिद्धि हो जाती है।

सच में तो विषय/तत्त्व/शास्त्र का ज्ञान न होने में अंतरंग कारण ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म का उदय है। उदय इसलिए है कि जीव अपने भाव कर्मों से ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म का बंध करके आया है;

Created by Universal Document Converter

अत: अब उसका फल तो प्राप्त होगा ही; परन्तु भविष्य में हमें तत्त्वज्ञान हो सके, प्रवचन समझ में आ सकें व उसका योग्य-चिंतन मंथन करके जीवन में शान्ति पा सकें इसके लिए उक्त कर्मों का जिन भावों/कारणों से आस्रव-बंध होता है, उन भावों को समझना आवश्यक है जिससे उनका त्याग कर कर्म बंधन से बचा जा सके।

जब हम तत्त्व/शास्त्र ज्ञान होते हुए भी, अन्य किसी के द्वारा पूछने पर बताते नहीं हैं; कोई ज्ञान में हमसे आगे न बढ़ जाए इस अभिप्राय से किसी को तत्त्वज्ञान नहीं कराते, जिनसे तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति हुई है - ऐसे निरपेक्ष गुरु का नाम छुपा कर, अपना पुरुषार्थ व बुद्धिमत्ता ही प्रकट करते हैं, अन्य जीव जब स्वाध्याय-अध्ययन कर रहे हों या कक्षा/प्रवचन/शिविर चल रहे हों तब इन ज्ञान प्रकाशक कार्यों में किसी भी प्रकार से अंतराय करते हैं, पढ़ने-पढ़ाने के साधनों/कार्यों का निषेध करते हैं, रुकावट करते हैं; पढ़ने-पढ़ाने वालों पर दोषारोपण करते हैं, अपनी सुविधा/आराम के लिए किसी के ज्ञान अभ्यास में अंतराय करते हैं, ज्ञानी पुरुषों की अवहेलना अपमान करते हैं, असमय प्रमाद पूर्वक सोते हैं, अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु स्वार्थवश जीवों को नेत्रहीन करने के बारे में सोचते हैं, शास्त्रों व शास्त्रकारों का अपमान करते हैं तब ज्ञान व ज्ञानियों के तिरस्कार के कारण ज्ञानावरण दर्शनावरण का तीव्र आस्रव-बंध होता है जिसके फल में जब जीव ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, तब भी ज्ञान प्राप्ति के साधन प्राप्त नहीं होते या लौकिक कार्यों में तीव्रता से चलने वाला ज्ञान भी तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में 'फ्यूज बल्ब' की तरह बंद पड़ा रहता है, कदाचित् कुछ समझ में आ जाए, याद हो जाए तो भी समय आने पर विस्मृत हो जाता है।

भूतकाल में किए गए इस तरह के अपराधों से बंधे हुए कर्मों में अभी हम कुछ नहीं कर सकते हैं; परन्तु उक्त तथ्य को समझ/स्वीकार कर यदि

Created by Universal Document Converter

चाहते हैं कि भविष्य में हमें परमार्थ तत्त्वज्ञान हो, भवभयनाशक जिन वचन सुनने-समझने का अवसर व स्मरण, चिंतन-मंथन की योग्यता प्राप्त हो तो इसके लिए सदा सजग रहते हुए बुद्धिपूर्वक सम्यग्ज्ञान और ज्ञानियों का सम्मान बहुमान करना चाहिए। हमें जो कुछ भी शास्त्रज्ञान हुआ है, वह जिन गुरु या शास्त्र के निमित्त से हुआ है, उनका नाम ससम्मान घोषित करना चाहिए, कोई तत्त्व चर्चा करता है तो अभिमान/ईर्ष्या/प्रतिस्पर्धा के भाव को मन में न रखकर, उदारता व उत्साह पूर्वक ज्ञान देने हेतु तत्पर रहना चाहिए, कदाचित् स्वयं के लिए कोई असुविधा हो जाए तो भी किसी की ज्ञान प्राप्ति में बाधक नहीं बनना चाहिए, कक्षा/शिविर न लगे, स्वाध्याय सभा न चले या किन्हीं स्वाध्याय प्रेमियों को व्यवधान हो - ऐसे कार्य कभी नहीं करना चाहिए; सहयोग न भी कर सकें तो असहयोग/अंतराय कभी नहीं करना चाहिए; स्वाध्याय प्रेमियों/लेखकों/वक्ताओं की प्रशंसा उदारता पूर्वक करते हुए, गुरुजन के सम्मान पूर्वक, शब्द के उच्चारण, अर्थ के विचार को ध्यान में रखते हुए, 'घर-घर चर्चा होय धर्म की' इस भावना के साथ निरपेक्ष/निष्पक्ष रहकर ज्ञान आराधना करने से ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म मंद होता है और ज्ञान की वृद्धि होती है।

ज्ञान व ज्ञानियों का अपमान अथवा ज्ञान प्रचार के कार्यों में व्यवधान करना, इस मानसिकता को प्रकाशित करता है कि उस जीव को सम्यग्ज्ञान प्रिय नहीं है, पसंद नहीं है अत: स्वाभाविक रूप से ऐसे कर्मों का बंध होता है जिसके फल में ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती; जबकि ज्ञान व ज्ञानियों का बहुमान, तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की उत्कट भावना, इस मानसिकता को प्रकट करती है कि इसे तत्त्वज्ञान बहुत अधिक प्रिय है अत: उसे प्रकृति (कर्म) ज्ञान प्राप्ति के अवसर प्रदान करती है। जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता है, उस वस्तु की कीमत है, उसे पाने की ललक है, उसे

Created by Universal Document Converter

वह वस्तु प्राप्त हो तो वह उसका उपयोग करता है अन्यथा दुरुपयोग ही करता है। हम तत्त्व ज्ञान की आवश्यकता को समझें, तत्त्वज्ञानियों का आदर पूर्वक समागम करें, प्राप्त तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने व स्वयं के आचरण में लाने की भावना करें तो निश्चित ही हमारा जीवन तत्त्वज्ञान से सुरभित होगा, इसके लिए किसी दया या किसी की दुआ की आवश्यकता रंचमात्र नहीं है।

❀❀❀

**जलधिगतोऽपि न कश्चित्कश्चित्तटगोऽपि रत्नमुपयाति।**
**पुण्यविपाकान्मर्त्यो मत्वेति विमुच्यतां खेदः।।**

कोई मनुष्य तो समुद्र में गोता लगाने पर भी रत्न नहीं पाता और कोई समुद्र के तट पर रहकर भी पा जाता है, यह सब जीवों के पाप-पुण्य का खेल है - ऐसा मानकर मनुष्य को खेद नहीं करना चाहिए कि क्यों दूसरे सुखी हैं और वह दुःखी है।

**चित्रयति यन्मयूरान् हरितयति शुकान् बकान् सितिकुरुते।**
**कर्मैव तत्करिष्यति सुखासुखं किं मनःखेदैः।।**

जो दैव मयूरों को चित्र-विचित्र रंग वाला बनाता है, तोतों को हरा और बगुलों को सफेद बनाता है, वही दैव प्राणियों को सुखी और दुःखी बनाता है, व्यर्थ खेद करने से क्या लाभ है?

- **'सुभाषितरत्नसंदोह' से साभार**

Created by Universal Document Converter

# 5

**च**तुर्गति रूप संसार में आत्मज्ञान के बिना कहीं भी सुख नहीं है। अनादिकाल से चारों गतियों में जन्म-मरण करते हुए जीव को दुख ही प्राप्त हो रहा है। संसार का इन्द्रियजन्य सुख भी पराधीन, क्षणिक, कल्पित होने से दु:ख ही है। 'आकुलतामय संसार सुख, जो निश्चय से है महादु:ख।'

फिर भी लौकिक दृष्टि से संसार में अनेक जीव शारीरिक/पारिवारिक/आर्थिक/राजनीतिक, अनेक प्रकार की अनुकूलताओं/प्रतिकूलताओं में जीवन व्यतीत करते हुए दिखाई देते हैं।

कोई अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त है, तो कोई परिजनों व परिचितों से त्रस्त है। इन विपरीत परिस्थितियों से बचने के लिए न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, सत्य-असत्य का विवेक किए बिना, जो कुछ बन सकता है, अपनी समझ व सामर्थ्य से कर सकता है, जीव उपाय करता है, पर दु:ख घटने/मिटने के स्थान पर बढ़ता ही चला जाता है। कभी बीमारी तो कभी दुर्घटना, कभी घाटा तो कभी प्रिय माता-पिता, पत्नी-पुत्र का वियोग, न जाने कितने प्रकार की प्रतिकूलताएँ आती हैं, जिनसे तनाव/अवसाद पूर्ण जीवन जीते हुए दिखाई देते हैं।

दूसरी ओर अनेक जीव ऐसे दिखते हैं जिनके जीवन में बहार ही बहार है, हर कार्य में सफलता, यश-सम्मान प्राप्त हो रहा है, नीरोग शरीर व अनुकूल परिवार-व्यापार है। वे घर को स्वर्ग व स्वयं को स्वर्गवासी मानकर आराम से रहते हुए योग्य धर्माचरण का पालन करते दिखते हैं।

उक्त दोनों ही परिस्थितियाँ हम सभी की श्रुत, परिचित, अनुभूत हैं। इन परिस्थितियों का निर्माता कौन है? हमारा भविष्य प्रतिकूलताओं के

Created by Universal Document Converter

बवंडरों से दु:खमय होगा या अनुकूलताओं से भरपूर सुखमय? इसका निर्धारण हमारे भाव ही करते हैं।

जो जीव अपनी प्रतिकूलता/दु:ख या पापोदय को दूर करने का उपाय दु:खी होने, दु:खी बने रहने व दु:खी दिखने में ही समझते हैं, वे हर समय किसी भी मित्र या परिजन के सामने ही नहीं, भगवान के सामने भी दु:ख ही व्यक्त करते रहते हैं अर्थात् अपना कल्पित रोना ही रोते रहते हैं। रोते रहना उन्हें अच्छा लगता है, वे समझते हैं कि रोने से दु:ख दूर होगा, कोई हमारी सहायता करेगा, पर ऐसा नहीं है।

अनेक जीव धार्मिक क्रियाओं को करते हुए अनेक प्रकार की भोगों की अभिलाषाएँ रखते हैं। अपने सांसारिक शत्रुओं का नाश करना चाहते हैं, मित्रों, परिजनों के दु:ख दूर करना चाहते हैं। इस तरह वे प्रकारान्तर से अपने आपको धर्मात्मा मानते हुए व्रत, तप, दान, त्याग आदि क्रियाएँ करते हैं; परन्तु अन्तरंग में उन क्रियाओं को करते हुए खेदखिन्न ही होते रहते हैं और निदान नाम का आर्त ध्यान करते हैं।

वर्तमान में शारीरिक व्याधि अथवा जन-धन हानि अथवा अपयश आदि की प्राप्ति पूर्व पाप कर्म के उदय से होती है। जो इन परिस्थितियों के बनने पर दु:खी होते हैं, खेद करते रहते हैं, रोते रहते हैं, सबके समक्ष दीनता पूर्ण शब्दों में अपनी परिस्थितियों का बखान करते हैं जिसे सुनकर सुनने वाला भी दु:खी हो जाता है, परिजन के वियोग होने पर शोक करते हैं, विलाप करते हैं, दहाड़ मारकर रोते हैं, दु:खी होकर बेहोश हो जाते हैं, वे यह नहीं समझते कि वर्तमान में दु:खी होना, भविष्य में भी दु:ख का कारण है। दु:ख-शोक-खेद-विलाप करने से असाता वेदनीय कर्म का आस्रव-बंध होता है जिसके फल में भविष्य में ऐसी ही परिस्थितियाँ बनती हैं कि जीव दु:खी होता है।

दु:खी होते रहना मानो इस बात की सूचना देता है कि इस जीव को

Created by Universal Document Converter

दु:खी दिखना/दिखाना अच्छा लगता है तो प्रकृति इस प्रकार का प्रबंध कर देती है कि भविष्य में भी भरपूर दु:ख ही दु:ख मिलता है।

यदि हम भविष्य में दु:खी नहीं होना चाहते, तो वर्तमान में तत्त्वज्ञान के अभ्यास से यह समझना चाहिए कि कोई भी स्थान/वस्तु/व्यक्ति/अवस्था दु:ख का कारण नहीं है, दु:ख का कारण अज्ञान है और सुख का कारण वस्तुस्वरूप का सम्यग्ज्ञान। इस बात को समझ कर, जो लोक में कहलाने वाली प्रतिकूलताओं में भी समता भाव धारण करता है, वह वर्तमान में प्रसन्न रहता है और उसे भविष्य में दु:ख की प्राप्ति नहीं होती।

हमारा भविष्य दु:खमय न होकर सुखमय हो, इसके लिए जो जीव प्राणियों पर दया करते हैं, अन्य जीवों के दु:ख देखकर 'उनके जीवन में प्रसन्नता कैसे आवे ?' इसका विचार करते हैं और यथायोग्य प्रयास करते हैं; त्यागी-व्रती-संयमी जीवों के जीवन में कभी दु:ख न आवे, उनकी साधना में बाधा न आवे - ऐसी भावना व प्रयास करते हैं, पात्रों को दान देते हैं, यथायोग्य संयमित जीवन जीते हैं; प्रतिकूल परिस्थिति बनने, अपमान होने या आर्थिक नुकसान होने पर भी जो क्षमा भाव धारण करते हैं, वस्तुस्वरूप की समझ पूर्वक निरंतर प्रसन्न रहते हैं, सच्ची समझ पर आधारित वर्तमान की प्रसन्नता उनके जीवन में साता वेदनीय का आस्रव-बंध कराती है, जिसके फल में भविष्य में भी अनुकूलताओं की प्राप्ति होती है, यश फैलता है, धर्म साधना के योग्य सभी अवसर प्राप्त होते हैं जिनका सदुपयोग कर जीव कर्मों का अभाव कर मोक्ष सुख प्राप्त कर लेते हैं।

इस तरह हम यह समझें कि दु:खी रहने के भाव, दु:खमय भविष्य और सत्यस्वरूप की समझ पूर्वक होने वाली प्रसन्नता, सभी जीवों को सुखी देखने की भावना, सुखमय भविष्य की निर्माता है।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

# 6

वस्तुस्वरूप की जानकारी के बिना जीव निरन्तर आकुलित/दुखित रहता है। प्रायः देखा जाता है कि प्रबुद्ध (लौकिक) व समृद्ध व्यक्ति भी देव-शास्त्र-गुरु-धर्म के स्वरूप से अनभिज्ञ रहते हैं। सुख-दुःख व सुख-दुःख के पारमार्थिक कारणों को समझ ही नहीं पाते। लौकिक जीवन में जो भी किंचित् उपयोगी या अपने से शक्तिशाली दिखता है, बिना विचारे उसे ही देव/भगवान मानकर पूजते हैं, किसी भी वेशधारी मांत्रिक-तांत्रिक, अंधविश्वासी को गुरु तथा पशु-पक्षियों को चारा-दाना डालना, औषधि की व्यवस्था करना, भूखों के लिए भोजन की व्यवस्था करना, प्यासे को पानी पिलाना, भिखारी को भीख देना, कन्याओं की शिक्षा आदि की व्यवस्था करना या गरीब व्यक्तियों की शिक्षा-चिकित्सा की व्यवस्था करना, इत्यादि कार्यों को ही धर्म मानकर यावज्जीवन उनमें लगे रहते हैं।

'इस लोक की रचना कैसे हुई? किसी ने की या नहीं? हमारे सुख-दुःख का कारण क्या है? गरीबी-अमीरी, सम्मान-अपमान, लाभ-हानि का कर्ता कौन है?' - इन प्रश्नों के तार्किक उत्तर खोजे बिना जब बाहर कोई कर्ता नहीं दिखता तो एक ईश्वर को ही सृष्टि, सुख-दुःख का कर्ता मानकर उस ईश्वर के 'कल्पित' स्वरूप को पूज्य मानते हैं और फिर रागी-द्वेषी देवी-देवताओं, पेड़-पौधों, नदी-नालों, गाय, सर्प सुअर इत्यादि की भी पूजन-भक्ति करते हैं, उनके मन्दिरों का निर्माण करते हैं, तरह-तरह की अंगूठियाँ-ताबीज पहनते हैं, घरों पर काली हांडी लटकाते हैं, दुकानों पर नींबू-मिर्ची लगाते हैं, वास्तु दोष मानकर अनेक परिवर्तन करते हैं, राशि आदि के अनुरूप ही नामकरण करते हैं, दुकान-तिजोरी पर लक्ष्मी के चित्र लगाते हैं, वाहन आदि की पूजा करते

Created by Universal Document Converter

हैं। इस तरह के कार्य करते हुए उन उच्च शिक्षितों को यह विचार भी नहीं आता कि क्या ये सब मेरे सुख-दु:ख के कारण हो सकते हैं? यदि ये सब सुख-दु:ख के कारण होते हैं तो फिर ऐसा क्यों दिखाई देता है कि दुनिया में लाखों लोग सुख या लाभ के इन कारणों को एकत्र करते हैं और कल्पित दु:ख के कारणों को दूर करते हैं, पर वे लोग तो दु:खी ही दिखाई देते हैं और जो ऐसे कारण एकत्र नहीं करते, वे भी कदाचित् सुखी दिखाई देते हैं।

जिनको उन्होंने पूज्य माना है उनमें आखिर ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण वे पूज्य हो गए? उन 'कल्पित पूज्यों' में से तो अनेक आकार, रूप की दृष्टि से भी मनोहर नहीं हैं, निर्दोष नहीं हैं। कोई रौद्र रूपधारी हैं, तो कोई सामान्य मनुष्याकार भी नहीं हैं। अनेकों नाना प्रकार की माँग करके सुखी करने का दावा करते हैं तो अनेक भय दिखाते हैं। इस तरह 'भयोत्पादक रूप व अवैज्ञानिक सिद्धान्तों वाले, देव कैसे हो सकते हैं? जो स्वयं भूख-प्यास-काम से पीड़ित हैं, अस्त्र-शस्त्र-वस्त्र आदि परिग्रह सहित हैं वे हमारी निराकुलता/शान्ति के कारण कैसे हो सकते हैं?' - यह बात उन्हें समझ में ही नहीं आती।

इसके साथ ही जो जैसा शरीर, परिवार, व्यापार प्राप्त हुआ है वह 'मैं हूँ' या 'मेरा है' कि मान्यता के साथ आजीवन उनकी सम्हाल-सुरक्षा की चिन्ता में ही लगे रहते हैं। 'मैंने ही शरीर को पुष्ट किया है, सुन्दर किया है, परिवार-व्यापार का संचालन मैं ही करता हूँ, मैं ही सबसे प्रेम करता हूँ या डाँट लगाता रहता हूँ अत: पूरा परिवार, समाज, संस्था सही ढंग से चल रही है, अन्यथा सभी बर्बाद हो जाता, बच्चों को मैंने ही पढ़ाया-लिखाया है, नौकरी पर लगाया है' - इस तरह शरीर से लेकर परिवार, व्यापार, समाज, संस्था के मालिक-संचालक-व्यवस्थापक बनकर निरन्तर दौड़-धूप में लगे रहते हैं, दु:खी होते हैं, तनाव में जीवन जीते हैं। जब

Created by Universal Document Converter

अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य नहीं होता है तो द्वेष करते हैं, अनुकूल होता है तो मान करते हैं, यह विचार ही नहीं आता कि क्या एक की इच्छा के अनुसार इतने जीवों का कार्य हो सकता है? यदि मेरी इच्छा है तो क्या अन्य की कोई इच्छा नहीं है? यदि मैं परिश्रम कर रहा हूँ तो क्या अन्य परिश्रम नहीं कर रहे हैं? यदि मेरा भाग्य है तो क्या अन्य का भाग्य नहीं है?

क्रोध-मान-माया-लोभ आदि राग-द्वेष के परिणाम दुःखमय व दुःख के कारण हैं, आस्रव-बन्ध के कारण हैं, पर वे सुखमय लगते हैं और जो आत्मकल्याणकारक, आत्मज्ञान व वैराग्यभाव हैं, वे सभी दुःखमय लगते हैं।

जिनेन्द्र भगवान कहते हैं "अठारह दोषों से रहित सर्वज्ञ परमात्मा, वीतरागता की पोषक जिनवाणी व निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्त भी लोक में पूज्य हैं। प्रत्येक जीव ही नहीं, प्रत्येक द्रव्य, कण-कण स्वतंत्र है, स्वयं परिणमनशील है, जिसमें जिस रूप परिणमन करने की योग्यता है, उसी के योग्य पुरुषार्थ, योग्य समय, योग्य स्थान, योग्य निमित्त भी होता ही है; अन्य की इच्छा/विकल्प के अनुसार किसी अन्य का कार्य नहीं होता। जीव को लोक में मोह-राग-द्वेष के भाव ही दुःखद हैं, अन्य परद्रव्य नहीं एवं आत्मज्ञान व आत्मज्ञानपूर्वक संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य होना ही दुःखद है।"

उक्त कथन परम सत्य होते हुए भी अशिक्षित हो या शिक्षित बहुधा वीतराग, निर्दोष, सर्वज्ञ, दर्शनीय परमात्मा, अनेकान्तात्मक वस्तुस्वरूप, स्याद्वादमय जिनवाणी और निर्ग्रंथ अपरिग्रही गुरु का स्वरूप, सुख-दुःख के वास्तविक कारणों को क्यों नहीं समझ पाते?

लोक में यदि किसी से भी पूछा जाए कि आपको अपने जीवन में सबसे दुःखद क्या लगता है? किन परिस्थितियों को बदलना चाहते हैं? अथवा किन परिस्थितियों को बदलने के लिए ही आप निरन्तर परिश्रम

Created by Universal Document Converter

करते हैं? अधिकांश लोगों का जवाब होगा की बीमारी, बेरोजगारी, गरीबी, अपमान इत्यादि परिस्थितियाँ दु:खद हैं और इनको दूर करने का ही उपाय वे निरन्तर करते हैं। उनका यह जवाब सही भी लगेगा; क्योंकि वे सब वास्तव में इन परिस्थितियों को ही बदलने का निरन्तर प्रयास करते दिखते हैं, इनके योग्य ही साधन जुटाते-हटाते हैं।

कुछ लोग कहेंगे कि हमें हमारे जीवन में ज्ञान की कमी खटकती है, हम अज्ञान को दूर करना चाहते हैं तो उनकी यह बात भी सत्य प्रतीत होगी क्योंकि 'कल्पित' अज्ञान को दूर करने के लिए ही नित-नूतन विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय खुल रहे हैं, कोचिंग सेंटर चल रहे हैं, यूट्यूब पर नाना प्रकार के वीडियो उपलब्ध हो रहे हैं, ज्ञानवर्धक टॉनिक व औषधियों का उपयोग कर रहे हैं, इतना ही नहीं, अनेक लोग तो मंत्र-तंत्र करके भी ज्ञान बढ़ाने का उपाय कर रहे हैं।

इस तरह सब अपने दु:ख/परेशानी/समस्याओं का कारण मात्र असाता वेदनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय को ही मानते हैं; जबकि सच्चाई यह है कि 'वस्तुस्वरूप की सच्ची समझ न होना ही दु:ख का कारण है।' वस्तुस्वरूप की यथार्थ समझ न होने में दर्शन मोहनीय कर्म कारण होता है और तदनुसार ही राग-द्वेष, काम-क्रोध-लोभ आदि भाव होने में चारित्र मोहनीय का उदय कारण होता है। दर्शन मोहनीय के कारण जो दु:ख का कारण नहीं है, वह दु:ख का कारण लगता है, जो सुख का कारण नहीं है, वह सुख का कारण लगता है। जो पूज्य नहीं है वह पूज्य और जो अपना नहीं है, वह अपना लगता है।

कर्मों के राजा मोह के कारण ही जो भाव होते हैं वे नए कर्मों के बंध में कारण होते हैं और इस तरह जन्म-मरणरूप परिभ्रमण की परम्परा निरन्तर चलती रहती है।

हमारे जीवन में दु:खमय संसार के कारणरूप मोह का आगमन क्यों

Created by Universal Document Converter

होता है? हमें सच्ची समझ क्यों नहीं होती है? देव-शास्त्र-गुरु का सम्यक् स्वरूप समझ में क्यों नहीं आता? इन प्रश्नों का उत्तर जानना आवश्यक है।

हे भगवन्! हम भविष्य में ये सब समझ पाएंगे या नहीं? सबका भविष्य जागृत विवेक वाला होगा या इसी प्रकार अंधविश्वासी? यदि आप अपना भविष्य जानना चाहते हैं तो वर्तमान के भावों को देखें-परखें; क्योंकि हमारे वर्तमान के भाव ही भविष्य के निर्माता हैं।

कर्म व्यवस्था को बहुत सावधानी पूर्वक समझना चाहिए। मोह कर्म के उदय से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप समझ में नहीं आता, सत्य वस्तुस्वरूप का विश्वास नहीं होता और ऐसी नासमझी के परिणाम और तदनुसार क्रियाओं से पुनः मोहनीय कर्म का आस्रव-बंध होता है।

1. जो जीव, परम पूज्य देवाधिदेव अरहन्त देव का स्वरूप विकृत करते हैं, उन्हें रागी-द्वेषी के रूप में मानते हैं, जगत का कर्ता-धर्ता, रोगी/क्षुधा रोग से ग्रस्त होने पर औषधि या भोजन करने वाला मानते हैं अथवा जो विकृत स्वरूपों को धारण करने वाले परिग्रही, अल्प ज्ञानी, दुःखी रागी-द्वेषी को पूज्य भगवान के रूप में स्वीकार करते हैं, उनका आदर-सम्मान पूजा प्रचार-प्रसार करते हैं।

2. जो आगम में दोष लगाते हैं, एकांतवाद को जिन वचन कहकर प्रसारित करते हैं, हिंसा या राग की पोषक जिनवाणी है - ऐसे कल्पित कथन बनाकर स्वीकार करते-कराते हैं।

3. मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध संघ में दूषण दिखाकर कलंकित करते हैं।

4. वीतरागी, अकर्तावादी जिन दर्शन में राग-द्वेष व कर्तृत्व का पोषण करते-कराते हैं।

Created by Universal Document Converter

5. देव गति के देवों को सुरापायी, मांसाहारी सिद्ध कर, स्वयं इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते हैं।

6. अनेकान्तात्मक वस्तुस्वरूप को न समझ कर एकान्तवाद का पोषण करते हैं।

7. विषय भोगों में आनंद मानते हैं।

8. राग-द्वेष करते हुए प्रसन्न होते हैं।

9. देह के पोषण में ही जीवन को लगाते हैं।

10. शरीर, परिवार, व्यापार की समृद्धि-सुरक्षा के लिए रागी-द्वेषी देवी-देवताओं को मानते-पूजते हैं, मंत्र-तंत्र अंधविश्वासों में उलझते हैं।

उक्त प्रकार के भाव वाले जीवों को दर्शन मोहनीय का आस्रव-बंध होता है, जिसके फल में बहुत काल तक सत्य स्वरूप समझ में नहीं आता।

तीव्र कषाय के उदय में जीव को अत्यधिक क्रोध-मान-छल-कपट-लोभ, काम वासना, ईर्ष्या-प्रतिस्पर्धा, पद-प्रतिष्ठा-सम्मान की चाहत, पंच इन्द्रिय विषयों का तीव्र आकर्षण होता है, जिसके फल में चारित्र मोहनीय का आस्रव-बंध होता है और उसके उदय आने पर पुनः इसी प्रकार के भाव होते हैं।

वर्तमान में कषाय मंद है तभी जिन मन्दिर आने, जिनवाणी पढ़ने के भाव हो रहे हैं; यह एक सुनहरा अवसर है। इस अवसर का लाभ लेकर तीव्र पुरुषार्थ पूर्वक यदि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, द्रव्य-गुण-पर्याय, सात तत्त्व और निज आत्मा को जानने-समझने का बुद्धि पूर्वक प्रयास किया जाए तो दर्शन मोहनीय व क्रमशः चारित्र मोहनीय मंद होकर बंद अर्थात् नष्ट हो सकता है और हम मोक्षमार्ग में लग सकते हैं - यही कार्य सर्वप्रथम करने योग्य है।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

# 7

**अ**नादिकाल से चतुर्गति परिभ्रमण चल रहा है। परिभ्रमण के दुःखों के संबंध में कविवर दौलतरामजी लिखते हैं – ''तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।'' यह भ्रमण की कथा-वार्ता अनादिकाल से है, जिसके दुःखों का वर्णन रंचमात्र भी जब हम छहढ़ालाजी या अन्य ग्रंथों के माध्यम से पढ़ते/सुनते हैं तो आँखों में आँसू आ जाते हैं, भय उत्पन्न होता है।

नरक गति में खाने-पीने का सर्वथा अभाव, काटा जाना, छेदा जाना, भेदा जाना, गलाया जाना, तलाया जाना, तपाया जाना इत्यादि कितने-कितने प्रकार के दुःख, अरबों-खरबों वर्षों की आयु प्राप्त करके क्षण-क्षण भोगना पड़ते हैं।

इसी प्रकार तिर्यंच गति के ''वध-बंधन आदिक दुख घने कोटि जीभ तैं जात न भने।''

मनुष्य पर्याय में भी सुख तो सच में रंचमात्र भी नहीं है, किंचित् अनुकूलताएँ होती हैं, उन अनुकूलताओं को जीव भ्रम से सुख मान लेता है।

देव गति में भी साधनों की कमी या शारीरिक रोग नहीं है, पर विषयों की चाह रूप मानसिक अपार दुःख है।

इस तरह जीव चारों ही गतियों में दुःख ही दुःख भोग रहा है। अनादिकाल से उन दुःखों को भोगते हुए भी अभी भूल गए हैं।

अनेक बार तो ऐसे प्रश्न भी हमारे मन में आते हैं कि नरक देखा किसने ? स्वर्ग कहाँ है ? अनेक लोग यह भी कह देते हैं कि नरक-स्वर्ग है ही नहीं। कोई विशेष बीमारी हो जाए, अस्पताल में भर्ती होना पड़े,

Created by Universal Document Converter

ऑपरेशन हो, तरह-तरह के इंजेक्शन लग रहे हों फिर भी दर्द कम न हो रहा हो तो बस यहीं तो नरक है और जहाँ वातानुकूलित मकान-दुकान, फैक्ट्री, रुपया, पैसा, मोबाइल, कम्प्यूटर मिल गया तो बस यहीं स्वर्ग है।

यह सत्य नहीं है। जैसे कोई व्यक्ति एक अपराध करे और उसका फल फाँसी हो तो क्या वैसे ही 10 अपराध करने पर यहाँ 10 बार फाँसी दी जा सकती है? नहीं; तो फिर क्या यदि वह 10 बार अपराध करता है तो 9 बार की कोई सजा नहीं मिलनी चाहिए? जो एक बार भी अपराध किया है उसके लिए उसने महीनों योजनाएँ बनाई हैं, दूसरों से छिपकर अपराध करने के चिंतन में लगा रहा है और इन सब भावों का फल नहीं मिलना चाहिए? यहाँ पर तो कानून के पास ऐसा कोई उपाय नहीं है कि इनकी सजा दे सके; परन्तु यदि सजा न मिले तो यह अन्याय होगा। इसीलिए नरक आदि की व्यवस्था प्रकृति में है। जहाँ एक-एक समय के परिणाम/भाव का फल भोगना पड़ता है।

इसी तरह जो व्यक्ति एक लाख दान दे या पूजन करे या प्रवचन करे तो उसे एक माला पहनाई जाएगी अब अगर पचास लाख रुपए दान दे, रोजाना प्रवचन करे, तीर्थ यात्रा करे, अन्य परोपकार के कार्य करें, तो कितनी मालाएँ पहनाई जाएँगी? यहाँ हम कितना सम्मान कर सकते हैं? यदि इस सबका अलग-अलग सम्मान नहीं कर सकते, तो फिर अन्याय नहीं हो जाएगा? इसलिए प्रकृति में स्वर्ग की व्यवस्था है। जो मन्दिर जाने का सोचता है, मन्दिर बनाने का सोचता है, मन्दिर में पूजन, स्वाध्याय, तत्त्व प्रभावना या परोपकार का भाव भी करता है, जिस-जिस क्षण ये भाव होते हैं, उस रूप कार्य हो सकें या न हो सकें तो भी पुण्य का आस्रव-बंध होता है और स्वर्ग में उसका फल मिलता है; इसलिए इस बात को भली-भाँति समझें कि स्वर्ग-नरक की निश्चित

Created by Universal Document Converter

ही व्यवस्थाएँ हैं। हम सब इन जगहों पर जाकर आए हैं, बस जिस तरह 50 साल का व्यक्ति जन्म के समय क्या कष्ट पाए थे उनको भूल जाता है या गाँव में रहने वाला व्यक्ति 25 साल से शहर में रहने पर गाँव की प्रतिकूलताओं को भूल जाता है। उसी प्रकार हम सब पूर्व जन्मों में भोगे गए दुःखों को भूल गए हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि वे दुःख थे ही नहीं। विचार कीजिए, विश्वास कीजिए और अपने भावों को बदलिए, भाव बदलेंगे तो भव अवश्य बदलेगा।

क्या विडंबना है? जब हम अखबार में पढ़ते हैं कि आज सर्दी बहुत थी तब हमें सर्दी लगने लग जाती है। जब कहा जाता है 'कल का तापमान 25 वर्ष बाद पहली बार इतना अधिक रहा' यह पढ़कर गर्मी लगने लग जाती है। उसी प्रकार हम जिन दुःखों को भोग कर आए हैं, उन दुःखों को हम विस्मृत कर चुके हैं; थोड़े से पुण्य के उदय में संयोगों, साधनों, यश को पाकर पिछला सब कुछ भूल गए और ऐसे कार्य करने में लगे हुए हैं कि पुनः उन्हीं अनन्त दुःखों की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं।

यदि हम चार गतियों के दुःख आगे नहीं भोगना चाहते हैं तो हम यह समझें कि वहाँ जाने के कारण क्या हैं? उन कारणों को समझेंगे तो उनका त्याग कर हम वहाँ जाने से बच सकेंगे।

नरक गति – जहाँ पर कम से कम दस हजार वर्ष के लिए जीव जाता है, सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास के वातावरण में 'मारो! काटो!' के शब्द ही जहाँ सुनाई देते हैं, जहाँ कोई हितंकर–परिजन नहीं है, जहाँ कोई शुभकामनाएँ देने वाला नहीं है, जहाँ कोई मित्र नहीं है – ऐसी नरक आयु का आस्रव अर्थात् प्राप्ति किन कारणों से होती है?

आचार्यदेव कहते हैं – "बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के भाव से जीव को नरक आयु का आस्रव–बंध होता है।"

Created by Universal Document Converter

हम रात-दिन कमाने, जोड़ने के चिंतन और यथायोग्य उन कार्यों को करने में लगे रहते हैं। बाहर में कितने संसाधन प्राप्त होंगे, कितने नहीं होंगे, यह तो जितना पुण्य का उदय होगा तदनुसार ही संभव है, हमारी चाह के अनुसार नहीं; फिर भी हम मकान- दुकान, रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, कपड़े, जूते, मोबाइल न जाने क्या-क्या और कितना-कितना जोड़ना चाहते हैं।

कितनी पुरानी सामग्री को हम बचा-बचा कर केवल 'यह मेरी है' भले ही वह अनुपयोगी हो तो भी उसमें 'ममत्व' भाव रख कर, अपना समझ कर तिजोरी में बंद करके रखते हैं। अलमारियों में पुराने-पुराने कपड़ों को धोकर, प्रेस करके रखते हैं, जिनका वर्षों तक उपयोग भी नहीं होता। कितने जूते-चप्पल पॉलिश करके रखते रहते हैं, देखते रहते हैं और पहनते कभी नहीं हैं। एक मकान में रहते हैं, चार जगह मकान रखना चाहते हैं। प्लॉट खरीदते हैं, खेत खरीदते हैं, फार्म-हाउस बनाते हैं। फार्म-हाउस पर कितने प्रकार के फूल-पत्तियाँ, पेड़-पौधे लगाकर, उनकी कटिंग कराकर पाप कमाते रहते हैं जबकि महीनों में 1 दिन के लिए घूमने-फिरने के लिए वहाँ जा पाते हैं। ये सब आरम्भ और परिग्रह के भाव, जोड़-जोड़ कर रखने का भाव, नरक ले जाने वाला भाव है।

अनाप-शनाप जोड़ने का भाव मानो यह सूचित कर रहा है कि तुमने इतने छोटे से जीवन में ही सैकड़ों-हजारों वर्षों की सामग्री का उपयोग करने का भाव कर लिया, बहुत जोड़ लिया, अब सब छोड़कर यहाँ से जाना पड़ेगा, वह सब खाने-पीने को नरक में प्राप्त नहीं होगा; दूसरों को तड़पा-तड़पा कर जोड़ा है, अब वहाँ भूखे-प्यासे रहकर कटते-पिटते रहकर तड़पना होगा। यहाँ बहुतों को तड़पाया है, इन पेड़-पौधे, फूल-पत्तियों, घास की काट-काट कर अनर्थकारी हिंसा की है, अनाप-शनाप पदार्थ जोड़कर जिनमें जीव उत्पत्ति हो रही है और जीव हिंसा हो रही

Created by Universal Document Converter

है, ऐसे पदार्थों का उपयोग किया है, जो नरकायु का कारण है। (सच में तो हमें मात्र पारिवारिक, सामाजिक, औद्योगिक कार्यों हेतु ही हिंसा से नहीं बचना चाहिए बल्कि धार्मिक कार्यक्रमों में होने वाले अत्यधिक/अनावश्यक आरम्भ आदि के कार्यों से भी बचना चाहिए क्योंकि प्रदर्शन में हम धार्मिक सिद्धान्तों व यत्नाचार को भूल जाते हैं, केवल दिखावट, सजावट, बनावट में उत्साह पूर्वक कुछ भी करने लग जाते हैं, जो उचित नहीं है।)

मिथ्यादर्शन के साथ क्रोध-मान-माया-लोभ का परिणाम, अपने को सबसे बड़ा समझने का परिणाम, दूसरों को नीचा दिखाने का परिणाम, दूसरों को दु:खी करने का भाव, दूसरों की वस्तु छीनना, तीव्र अनर्गल मैथुन का भाव, अति रागपूर्वक अभक्ष्य भक्षण करना, बैर भाव रखना, देव-शास्त्र-गुरु की निंदा करने से दु:खदायक नरकायु का आस्रव-बंध होता है।

हिंसा में आनंद मानना, झूठ बोलकर आनंद मानना, चोरी कर आनंद मानना, परिग्रह जोड़कर आनंद मानना ये सब रौद्र ध्यान के भयानक परिणाम जीव को नरक आयु के आस्रव-बंध के कारण हैं।

विचार कीजिए हम टेलीविजन पर मार-धाड़ देखते रहते हैं और खुश होते हैं, 'बहुत बढ़िया' कहकर तालियाँ बजाते हैं। छोटे-छोटे बच्चों को हम ऐसे वीडियो-गेम दे देते हैं जिनमें वे पशु-पक्षी मार कर खुश होते हैं कि 'हमने इतनी चिड़िया मार दी, हमने इतने लोगों को मार दिया, हमने इतने पक्षियों अथवा मछलियों को मार दिया'; भले ही वह काल्पनिक है, वहाँ जीव नहीं है लेकिन यह जो मारने का भाव और हिंसा में आनंद मानने का भाव है, वह नरक ले जाने वाला है।

हम बात-बात में झूठ बोलते हैं। बच्चों में भी झूठ बोलने के संस्कार

Created by Universal Document Converter

दे देते हैं जैसे – घर में रहते हुए कह देते हैं कि "जाओ कह दो मैं घर पर नहीं हूँ।" पर्स में पैसा होते हुए भी, जिसका पता बच्चों को भी है, लेकिन बच्चों से कह देते हैं कि "जाओ उनको कह दो मेरे पापा के पास पैसे नहीं हैं।" – ये छोटी-छोटी बातें बच्चों को झूठ बोलने के लिए प्रेरित करती हैं और वे झूठ बोलकर अपना कार्य सिद्ध करके खुश होते हैं, यह झूठ बोल कर आनन्द मानने का भाव दुःखद है।

चाहे आप टैक्स की चोरी करें, किसी दूसरे की वस्तु की चोरी करें, पार्टनरशिप में दूसरे का धन अपने नाम कर लें, झूठी लिखा-पढ़ी करके दूसरों की वस्तु को छीन लें और फिर खुश हों, दुकान-मकान, खेत इत्यादि में अतिक्रमण करके जमीन ज्यादा बड़ी मानकर खुश हो जाएँ पर ध्यान रखना यह चोरी का आनन्द भी नरक का कारण है।

किसी भी प्रकार से परिग्रह को प्राप्त करके या प्राप्त करने की कल्पना करके भी खुश होते रहते हैं तो यह परिग्रहानंदी रौद्र ध्यान कहलाता है जो नरक ले जाने वाला है। क्या हमें कभी लगता है हम आलीशान बंगले के वातानुकूलित वातावरण में अकेले सोफे पर बैठ कर, अपने बंगले को देख-देख कर खुश हो रहे हैं, ए.सी., टी.वी., सीढ़ियाँ, रेलिंग, सोफा देखकर खुश हो रहे हैं यह परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है और नरक ले जाने वाला है?

यदि हम सच में नरक का भव नहीं देखना चाहते, नरक के दुःख नहीं भोगना चाहते, तिल-तिल कर नहीं कटना चाहते, गरम लोहे की सलाखों से नहीं छेदे जाना चाहते, भूख और प्यास से नहीं तड़पना चाहते तो सबसे पहले हम देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करते हुए स्वाध्याय करें। स्वाध्याय से ही मार्ग मिलेगा। प्रकाश में ही मार्ग दिखता है। यह जिनवाणी रूपी प्रकाश ही हमारे लिए योग्य पथ आलोकित करेगा। हमारे भाव कैसे होने चाहिए? इसका ज्ञान कराएगा।

Created by Universal Document Converter

हमारे जीवन में निर्लोभता-निरपेक्षता आवे, संतोषमय जीवन हो। गृहस्थ जीवन के योग्य जो भी पद, पैसा, प्रतिष्ठा, परिवार प्राप्त हुआ है, आवश्यक होने पर उनके बीच में रहना पड़ता है लेकिन यह सब पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ है, मेरे कमाने या मेरे चाहने या मेरे कहने से प्राप्त नहीं हुआ है और न इन साधनों से कोई भी जीव आज तक सुखी हुआ है और न होगा। केवल इस मनुष्य जीवन और मनुष्य जीवन में भी गृहस्थ जीवन की कमजोरीवश इन साधनों की उपयोगिता दिखाई देती है, अतः सच में तो संतोष से ही शान्ति मिलती है। अपने अनन्त वैभव की महिमा और प्राप्त संसाधनों में निरपेक्षता/निर्लोभता की वृत्ति हमें नरक जाने से बचा सकती है।

जो बहुत आरंभ और परिग्रह के भाव हैं, देव-शास्त्र-गुरु की विराधना, अन्याय-अनीति-अभक्ष्य सेवन करने के भाव, रौद्र ध्यान के भाव, दूसरों की वस्तुएँ छीनने, अतिक्रमण करने, दूसरों का घात करने, दुःखी करने के तीव्र परिणाम हैं, उन परिणामों से अपने आप को बचाएँ और स्व-पर हितकर भावों की वृद्धि करें, तो हम नरक के दुःखों से बच सकते हैं।

❀❀❀

**द्वीपे जलनिधिमध्ये गहनवने वैरिणां समूहेऽपि।**
**रक्षति मर्त्यं सुकृतं पूर्वकृतं भृत्यवत् सततम्।।**

पूर्व जन्म में जो पुण्य कर्म का संचय किया है, वह मनुष्य की द्वीप में, समुद्र के मध्य में, गहन वन में और शत्रुओं के समूह में सदा सेवक की तरह रक्षा करता है अर्थात् यदि दैव शुभ कर्म रूप होता है तो जीव का शुभ करता है और यदि अशुभ रूप होता है तो जीव का अनिष्ट करता है। – **'सुभाषितरत्नसंदोह' से साभार**

Created by Universal Document Converter

# 8

**चा**र गतियों में तिर्यंच गति और मनुष्य गति हमें प्रत्यक्ष दिखाई देती है। तिर्यंच गति बहुत विस्तृत है, क्योंकि इसमें एक इन्द्रिय जीव से लेकर मन सहित पंचेन्द्रिय जीवों तक की अवस्थाएँ होती हैं।

पाँच प्रकार के स्थावर अर्थात् पृथ्वी–जल–अग्नि–वायु और वनस्पति ही जिनका शरीर है ऐसे एकेन्द्रिय जीव एवं लट–केंचुआ इत्यादि दो इन्द्रिय जीव, चींटी–चिंटा, जूँ, खटमल इत्यादि तीन इन्द्रिय जीव, मक्खी, मच्छर, भंवरा, तितली आदि चार इन्द्रिय जीव और जितने भी पशु–पक्षी हमें दिखाई देते हैं और जो नहीं भी दिखाई देते हैं ऐसे मन रहित और मन सहित पंचेन्द्रिय जीव – ये सभी तिर्यंच गति के जीव कहलाते हैं।

तिर्यंच गति के दु:ख हमें प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं कि किस तरह पृथ्वी को खोदा जाता है, बिना छने पानी को उबाला जाता है, फेंका जाता है, पानी में रासायनिक पदार्थ मिलाए जाते हैं जिनसे मछली–मेंढक इत्यादि जीव भी मर जाते हैं, तब एक इन्द्रिय जीवों की क्या दशा होती होगी। अग्नि को जलाया–बुझाया जाता है, अनेक प्रकार से हवा को चलाया जाता है, वनस्पति को छेदा जाता है, काटा जाता है, कुचला जाता है, जलाया जाता है, गलाया जाता है, रासायनिक पदार्थों द्वारा नष्ट किया जाता है।

इन पाँच प्रकार के स्थावर (एक इन्द्रिय) जीवों को तो जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य लोग जीव ही स्वीकार नहीं करते हैं; लेकिन जिनको जीव स्वीकार करते हैं ऐसे दो इन्द्रिय से लेकर कौआ, कबूतर, तोता, गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, मुर्गी, बकरा, भैंसा, खरगोश, हिरण, घोड़ा,

Created by Universal Document Converter

गधा, सुअर, हाथी, ऊँट, मछली इत्यादि जीवों के दुःख भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि उन्हें कैसे कुचला जाता है, बाँधकर छोड़ देते हैं, मारकर खाया जाता है, जिंदा जलाया जाता है। अपनी खुशी के लिए घोड़े-ऊँट आदि की दौड़ कराते हैं, आपस में उन्हें लड़ाते हैं, बाहर ले जाते समय जिस ट्रक में 10 गाय- बैलों को ले जाने की क्षमता हो उसमें 20-20 भर दिए जाते हैं। मुर्गा-मुर्गी, बकरा, भैंसा इत्यादि की बलि चढ़ा दी जाती है। छोटे जीव-जंतुओं का अचार डाल दिया जाता है, बाँधा जाता है, छेदा जाता है। औषधि और श्रृंगार प्रसाधन-सामग्री के निर्माण के पूर्व उन पर प्रयोग किए जाते हैं जिससे वे अंधे, बीमार, दिव्यांग होकर मर जाते हैं, गर्भ से बच्चों को निकाल लिया जाता है। जबरदस्ती गर्भाधान कराया जाता है, अधिक दूध पाने के लिए न जाने कितने प्रकार से गाय-भैंस इत्यादि को प्रताड़ित किया जाता है।

दवाइयों के नाम पर जहर का प्रयोग मच्छरों, खटमलों, चूहों, पक्षियों पर किया जाता है, जाल में फँसाया जाता है, पिंजरे में कैद किया जाता है, यहाँ तक कि अनेक बार मनुष्यों के रोग का कारण किन्हीं पशुओं को मानकर सरकार भी इन्हें मारने का आदेश दे देती है। इनमें से एक-एक प्रकार के दुःख के बारे में भी आप विचार करेंगे तो आँखों से आँसू आ जाएँगे, मन काँप जाएगा।

इस तरह तिर्यंच गति के प्रत्यक्ष दिखते हुए दुःखों को भी क्या हम स्वीकार नहीं कर पाएंगे ? यदि इन दुःखों को स्वीकार कर पाते हैं और उनसे बचना चाहते हैं तो हमें उनके कारणों को जानकर उनसे बचना होगा।

तिर्यंच आयु का आस्रव-बंध कैसे होता है अर्थात् तिर्यंच गति का भव जीव को किन भावों से मिलता है ?

Created by Universal Document Converter

जो जीव छल-प्रपंच पूर्वक जीवन जीते हैं, मायाचार अर्थात् कपट पूर्ण जिनका जीवन होता है; मन में कुछ सोचते हैं, वचन से कुछ कहते हैं और काया से कुछ करते हैं - ऐसे जीवों को तिर्यंच आयु का आस्रव होता है।

शिष्टाचार निभाने, धन-पद पाने, किसी को नीचा दिखाने, दूसरों से आगे बढ़ने, मनोरंजन करने या व्यापार करने के लिए कितने प्रकार से ग्राहकों, मित्रों, पड़ोसियों यहाँ तक कि परिवार वालों से भी छल पूर्ण व्यवहार करते हैं।

माता-पिता से झूठ बोल कर हम अपने आप को सुरक्षित रखना चाहते हैं उनसे धन पाना चाहते हैं, अपनी गलतियाँ छुपाने के लिए विनम्र बनकर उनका मन जीतना (बेवकूफ बनाना) चाहते हैं।

पति-पत्नी के बीच कपट पूर्ण व्यवहार चलता है। पत्नी आभूषण पाने, पीहर जाने या घूमने, सास-ससुर की सेवा से बचने के लिए अपने झूठे वचनों व आँसुओं से पति को प्रभावित करती है और पति भी अपनी कमियों/दोषों को छुपाने के लिए सच्चे-झूठे प्रेमालाप में पत्नी को उलझाते हैं।

सास, बहू को नीचा दिखाने के लिए झूठे आरोप लगाती है, उसके द्वारा किये काम को अपने द्वारा किये बताती है। बहू, सास-ससुर की सेवा से बचने के लिए अनावश्यक काम निकालती है या बीमारी के अनेक बहाने बनाती है।

मन्दिर में दर्शन-पूजन करने और स्वाध्याय से बचने के लिए समय की कमी और समझ में नहीं आता कहकर बचते हैं।

दूसरों को धार्मिक/सामाजिक छात्रावास में भेजने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने बच्चों को नहीं भेजते।

Created by Universal Document Converter

धर्म की जय जयकार करते हैं पर धर्माचरण को कष्टदायक मानते हैं।

सम्यग्दर्शन के कारण बताकर मन्दिर बनाते हैं, पंचकल्याणक करवाते हैं, दान देते हैं पर मन में केवल नाम की चाहत लगी रहती है।

पद-पैसा-प्रतिष्ठा पाने के लिए जिनका हृदय से सम्मान नहीं करते, उनके भी पैर छूते हैं, उनको भगवान कहते हुए देखते हैं (गधे को बाप कहना) और पीठ पीछे उनको ही निर्दयी/अन्यायी/ बेवकूफ कहते और समझते हैं।

काम पड़ने पर सब अपने लगते हैं और काम निकल जाने पर लोगों को पहचानते भी नहीं हैं।

यह सब मायाचार पूर्ण व्यवहार हमें तिर्यंच आयु की ओर ले जाने वाला है, जहाँ लाखों वर्षों तक भव-भव में विविध प्रकार के अकथनीय कष्ट सहन करने पड़ेंगे।

आगम में चार प्रकार के आर्त ध्यानों को भी तिर्यंच आयु का कारण कहा है। आर्त = दुःखी, ध्यान = होते रहना = दुःखी होते रहना, बात-बात पर रोते रहना, आर्त्त ध्यान है।

हमें ऐसा लगता है कि ध्यान तो त्यागी-तपस्वी ही किया करते हैं; परन्तु ऐसा नहीं है। प्रत्येक जीव ध्यान तो करता ही है जैसे - दुकानदार ग्राहक का, माता-पिता बच्चों का, भोजन बनाने वाला भोजन का, चोर धन का, खिलाड़ी खेल का, विद्यार्थी पढ़ाई का एकाग्रता पूर्वक ध्यान करता ही है। ड्राइवर ध्यानपूर्वक गाड़ी न चलाएँ तो दुर्घटना हो सकती है, भोजन यदि ध्यान से न बनाया जाए तो स्वाद बिगड़ जाएगा, दूध उफन जाएगा। इसका अर्थ है ध्यान तो सभी करते हैं; क्योंकि ध्यान का अर्थ है किसी एक ही विषय/वस्तु को निरन्तर जानते रहना।

Created by Universal Document Converter

दु:ख सांसारिक अवस्था में होने वाली जीव की एक विशेष पर्याय है; परन्तु दु:खी होते रहना, दु:खी बने रहना, यह आर्त्त ध्यान है।

हमारे किसी इष्ट माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री अथवा योग्य पदस्थापन स्थान, योग्य मकान, नौकरी, वस्तु के वियोग होने पर जो हमारे मन में निरन्तर पीड़ा चलती है, दु:ख होता है, दु:खी होते रहते हैं, दूसरों के सामने अपने दु:ख व्यक्त करते रहते हैं, यह इष्ट वियोगज आर्त ध्यान कहलाता है।

किसी प्रतिकूल वस्तु, व्यक्ति, पद, स्थान की प्राप्ति होने पर दु:खी होते रहना जैसे कि - सास-बहू, पति-पत्नी, किराएदार, मकान-मालिक, नौकर, अधिकारी को प्रतिकूल/अयोग्य/दुष्ट मानकर या 'वे अन्याय कर रहे हैं अथवा सहयोग नहीं करते हैं अथवा परेशान करते हैं' इस प्रकार मानकर निरन्तर दु:खी होते रहते हैं यह अनिष्ट संयोगज नाम का आर्त ध्यान कहलाता है।

शरीर है तो शरीर में कोई न कोई व्याधि होती रहती है, क्योंकि शरीर को व्याधि अर्थात् रोगों का ही घर कहा गया है। लाखों रोग इस शरीर में भरे हुए हैं जिनमें से एक-दो रोग भी हमारे सामने आ जाते हैं तो होश उड़ जाते हैं। ऐसा कौन मनुष्य/व्यक्ति होगा जिसको ब्लड प्रेशर, शुगर, सिर दर्द, पेट दर्द, घुटने का दर्द, कमर दर्द, कोरोना, कैंसर या फोड़े-फुंसी इत्यादि न हुए हों या होते रहते हों? रोग होने पर दु:खी होना यह अलग बात है; लेकिन उस रोग का ही निरन्तर चिंतन करना, रोग न हो जाए इसके लिए रोग का चिंतन करना, रोग हो चुका था उसका भी रोग जाने के बाद विचार करते रहना और दु:खी होते रहना, दूसरों को सालों बाद भी उस रोग के बारे में दु:खी होकर बताते रहना यह पीड़ा चिन्तन नाम का आर्त ध्यान कहलाता है।

Created by Universal Document Converter

अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो पूजा-पाठ, व्रत, दान, विधान आदि कार्यक्रम करते/कराते हैं, भगवान को विराजमान करते हैं, दसलक्षण पर्व मनाते हैं, इन सब धार्मिक कार्यों को करते हुए मन में इस प्रकार की भावना भाते रहते हैं 'हे प्रभु! मुझे इस विधान के फल में धन मिले, यह पद मिले, स्वर्ग की प्राप्ति हो, अगले जन्म में वैभव की प्राप्ति हो, अगले जन्म में मुझे अमुक व्यक्ति के साथ पति-पत्नी का संबंध बने, अगले जन्म में मैं किसी से बदला ले सकूँ' इत्यादि प्रकार की दुर्भावना भाते हैं जिसे निदान नामक आर्त ध्यान कहते हैं। भगवान के सामने आकर भी यह जीव अपना रोना नहीं छोड़ पाता, रोने का कार्य बंद नहीं होता।

हम जब अपने वास्तविक या कल्पित दुःख अन्य के सामने सुनाते हैं तो मन में ऐसा लगता है कि शायद हमारे दुःख कम हो रहे हैं; पर यह विचार नहीं करते कि किसी दूसरे के सामने रोने से कोई हमारे दुःखों को बाँटने वाला नहीं है और दुःख रोने से कम होते नहीं हैं। दुःख पाप के उदय में प्राप्त हुए हैं। पाप का उदय जाने और पुण्य का उदय आने पर ही दुःखों का अभाव हो सकता है। बार-बार दुःखी होते रहना, अपने दुःख दूसरों को सुनाते रहना, अपने दुःखों का चिंतन-विचार करते रहना, वातानुकूलित कक्ष में बैठकर भी अपने भूतकाल के दुःखों को याद करना ये सभी आर्त ध्यान हैं। यह आर्त ध्यान भी जीव को तिर्यंच आयु के आस्रव का कारण है, तिर्यंच गति के भयंकर दुःख दिलाने वाला है।

इसका मनोवैज्ञानिक/प्राकृतिक तथ्य यह हो सकता है कि जो जीव निरन्तर दुःखी होता रहता है प्रकृति (कर्म) शायद यह निर्णय कर लेती है कि इस जीव को दुःख बहुत पसन्द है, जब देखो तब दुःख के बारे में ही सोचता, बोलता है इसका मतलब है कि इसे दुःख प्रिय है तो इसे

Created by Universal Document Converter

ऐसी जगह भेजा जाए जहाँ बार-बार चाबुक पड़ेंगे, डंडे लगेंगे, खाने-पीने को नहीं मिलेगा, कोई बाँधेगा, कोई जलायेगा, कोई खायेगा वहाँ यह भरपूर दुःखी होता रहेगा।

यदि हम तिर्यंच गति के दुःख नहीं भोगना चाहते, अनन्त दुःखों से मुक्ति चाहते हैं तो छल-कपट, मायाचार पूर्ण व्यवहार छोड़कर एवं जिनवाणी का स्वाध्याय करते हुए वस्तुस्वरूप स्वीकार कर ही आर्त ध्यानों से बचकर तिर्यंच आयु से बच सकते हैं।

❀❀❀

**नश्यतु यातु विदेशं प्रविशतु धरणीतलं खमुत्पततु।**
**विदिशं दिशं तु गच्छतु नो जीवस्त्यज्यते विधिना।।**

प्राणी मर जाए या विदेश चला जाए या पृथ्वी में समा जाए या आकाश में उड़ जाए या दिशा-विदिशा में चला जाए, किन्तु दैव उसका पीछा नहीं छोड़ता।

**नरवरसुरवरविद्याधरेषु लोके न दृश्यते कोऽपि।**
**शक्नोति यो निषेद्धुं भानोरिव कर्मणामुदयम्।।**

जिस प्रकार इस लोक में मनुष्यों, देवों और विद्याधरों में कोई ऐसा नहीं है, जो सूर्य के उदय को रोक सके, उसी तरह कर्मों के उदय को भी कोई अन्य पुरुषश्रेष्ठ या देवोत्तम या विद्याधर नहीं रोक सकता।

– **'सुभाषितरत्नसंदोह' से साभार**

Created by Universal Document Converter

# 9

वर्तमान में हम मनुष्य गति में हैं, मनुष्य आयु कर्म के उदय से जितनी आयु प्राप्त है, उतने समय तक हम इस मनुष्य शरीर में रहेंगे। हम जिस समय यह पुस्तक पढ़ने की अवस्था में हैं, उस समय तो हमें बहुत संसाधन अपने इर्द-गिर्द दिखाई देते हैं, कदाचित् तीव्र पुण्य का उदय हो तो बहुत कुछ अपनी इच्छानुसार होता हुआ दिखाई देता है, अतः हम सुखी दिखाई देते हैं; परन्तु सत्य यह है कि मनुष्य पर्याय में भी गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यंत शारीरिक-मानसिक दुःख ही दुःख हैं। गर्भ की अवस्था में 9 माह तक माँ के छोटे-से उदर में सिकुड़ कर उल्टे लटके हुए रहना पड़ता है, माता जब काम करती है, तब हमारे ऊपर दबाव बनता है, माता जब गर्म या चरखा खाती है अथवा भूखे रहती है, उस सबके कष्ट हमें भी सहन करना होते हैं। बहुत कष्टदायक स्थिति में हमारा जन्म होता है। जन्म लेते ही भूख-प्यास के कष्ट होते हैं, अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं।

जन्म के साथ ही यदि पाप का उदय हो तो दिव्यांग शरीर मिलता है, इन्द्रियाँ कमजोर होती हैं, अन्य संसाधनों की हीनता होती है, ज्ञान की न्यूनता हो तो जीवन पर्यंत मंदबुद्धि रहते हुए कष्ट सहन करने पड़ते हैं। यदि अन्य सभी अनुकूलताएँ हैं भी तो पढ़ने-लिखने के कष्ट, पैसा कमाने की चिन्ता, नौकरी लगने और फिर विवाह की चिन्ता, विवाह हो जाने पर संतान होने की चिन्ता, संतान होते ही मर जाए तो दुःख और यदि संतान रहे; परन्तु वह कुमार्ग पर चले, हमारी बात न माने, सेवा न करे तो दुःख, व्यापार न चले, परिवार में झगड़े हों, योग्य पद की प्राप्ति न हो, सम्मान की प्राप्ति न हो तो आकुलता और अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाएँ तो दुःख ही दुःख। कितना कहा जाए! संसार

Created by Universal Document Converter

में कोई तन दु:खी, कोई मन दु:खी, कोई धन दु:खी, सब दु:खी ही दिखाई देते हैं।

किसी के दु:ख बाहर दिखते हैं, किसी के अंतरंग में तनाव, अवसाद, संघर्ष निरन्तर चलता रहता है। सबसे आगे रहने, सब कुछ पाने, सबको जीतने इत्यादि अनेक प्रकार की लालसाएँ, इच्छाएँ मनुष्य को दु:खी किया करती हैं। क्रोध, मान आदि कषायें आपस में झगड़ा कराती हैं, मारपीट होती है, अपने ही सगे-संबंधियों से दूरियाँ बनती हैं, धर्म क्षेत्र में आकर भी कषाय के वशीभूत होकर देव-शास्त्र-गुरु की भी विराधना कर देते हैं, किसी की हत्या करने और आत्महत्या करने से भी नहीं चूकते। विचार कीजिए कि इस मनुष्य पर्याय में कितने प्रकार के कष्ट हैं और इन कष्टों को दूर करने के लिए भी हम कितने घोर अन्याय-अनीति-अभक्ष्यों का सेवन करते हैं। भ्रष्टाचार, बलात्कार, रिश्वतखोरी, मांसाहार व्यभिचार न जाने किन-किन रूपों में हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हुए पाप कमाते हैं।

इस मनुष्य पर्याय का यदि सदुपयोग कर लिया जाए तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की आराधना पूर्वक जिनवाणी का श्रवण करते हुए मोक्षमार्ग/सुख-शान्ति का प्रारम्भ यहाँ से हो सकता है और केवल प्रारम्भ ही नहीं होता; अपितु मोक्षमार्ग की वृद्धि और पूर्णता भी इस मनुष्य पर्याय में होती है। एकमात्र मनुष्य पर्याय ही ऐसी है जहाँ संयम की साधना की जा सकती है। इस मनुष्य पर्याय में ही पाँचों परमेष्ठी के पद प्राप्त किए जा सकते हैं, इस अपेक्षा से मनुष्य पर्याय की प्रशंसा भी की जाती है।

यह मनुष्य पर्याय किन कारणों से प्राप्त होती है? हमारे ऐसे कौन-से भाव हैं, जो मनुष्य भव का कारण बनते हैं?

Created by Universal Document Converter

अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के भाव मनुष्य आयु के कारण हैं। उठाना-रखना, गिराना, बनाना, बिगाड़ना, दौड़ना-दौड़ाना, भागना, किसी न किसी कार्य में लगे रहना, आरम्भ कार्य कहलाते हैं और बाह्य पदार्थों को पाने, जोड़ने की निरन्तर अभिलाषा और प्राप्त हो जाने पर उनमें ममत्व बुद्धि अर्थात् 'ये मेरे हैं', जैसे - 'मेरा मकान-दुकान, रुपया-पैसा, परिवार है' इत्यादि भाव परिग्रह भाव कहलाते हैं। जिन जीवों को आरम्भ और परिग्रह के भाव अल्प होते हैं, जो प्राप्त सामग्री में संतुष्ट होते हैं, जो न्याय-नीति पूर्वक कमाते हैं और विवेक से खर्च करते हैं, अपने भाई, माता-पिता, रिश्तेदार, मित्र अथवा अन्य किसी की धन-संपत्ति को छीनते, दबाते नहीं हैं, किसी से उधार लिया हुआ समय पर वापस कर देते हैं, अनावश्यक अनेक प्रकार की दुकान-फैक्ट्रियाँ खोलने का जिनको भाव नहीं होता है, आजीविका चलाने के योग्य जो भी संसाधन उपलब्ध हैं उनमें संतुष्ट होते हैं, जिनके स्वभाव में कोमलता होती है, सरलता होती है, सहृदयता होती है, जो कहते हैं वही करते हैं, योग्य व्यक्ति को विनम्रता पूर्वक योग्य सम्मान देते हैं, छल-कपट पूर्वक पद-पैसा-प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करना चाहते, देव-शास्त्र-गुरु का योग्य बहुमान करते हैं, यत्नाचार पूर्वक प्रवर्तन करते हैं, उनको इन भावों और क्रियाओं से मनुष्य आयु का आस्रव होता है।

---

प्राय: सभी की मान्यता है कि स्वर्ग अर्थात् देव गति में सुख है। चारों गतियों में सबसे अच्छी देव गति है, इसलिए किसी के घर में सुख शान्ति, अनुकूलता हो तो कहते हैं 'इसका घर तो स्वर्ग है' किसी का मरण हो जाए तो हम कहते हैं कि 'स्वर्गवास हो गया', अर्थात् अच्छी जगह चला गया; परन्तु सच में चारों ही गतियों में कहीं भी वास्तविक, सच्चा सुख है ही नहीं तो देवगति में सुख कहाँ से होगा?

Created by Universal Document Converter

देव गति में शारीरिक बीमारियाँ नहीं हैं, व्यापार आदि करने की प्रतिस्पर्धा नहीं है, स्कूल-कॉलेज जाने की झंझट नहीं है, फिर भी वहाँ मानसिक रूप से देव दुःखी रहते हैं। वहाँ की व्यवस्थाएँ इस प्रकार की हैं कि शारीरिक रूप से भले कष्ट न हो, लेकिन वहाँ के देव को चौकीदार बनकर, सहायक बनकर यहाँ तक कि हाथी-घोड़ा आदि पशु बनकर भी इन्द्रों की सवारी बनना पड़ता है, नृत्य-गान में सम्मिलित होना होता है, अन्य देवों के वैभव को देखकर ईर्ष्या का भाव निरन्तर चलता है, विषयों की अभिलाषा तीव्र होती है, वहाँ विषय भोग के साधन भी होते हैं, उन साधनों में करोड़ों वर्षों की आयु ऐसे ही बीत जाती है और अन्त में रोते-बिलखते हुए जीव देव के भव को छोड़ देता है।

देव गति में इन्द्रिय विषय-भोगों के संसाधन उपलब्ध होने, लंबी आयु होने, शारीरिक व्याधियाँ न होने आदि से उसे अच्छा भी कहा जाता है और लोग उस देवत्व की अभिलाषा भी करते हैं, अतः ऐसी देव पर्याय हमें किन भावों से प्राप्त होती है, यह समझना चाहिए।

राग सहित संयम धारण करने, संयम और असंयम के भाव होने, बिना इच्छा से भूख-प्यास इत्यादि की वेदना सहन करके अकाम निर्जरा होने, मिथ्यात्व सहित अनशन-ऊनोदर इत्यादि काय-क्लेशरूप बाल तप करने के भावों से देव आयु का आस्रव होता है। मिथ्यात्व अवस्था में अनेक प्रकार के तपश्चरण करते हुए भी संसार का अभाव नहीं होता, कर्मों की निर्जरा नहीं होती। मिथ्यात्व के कारण संसार में ही रहते हैं; लेकिन तप करने व विषयों के त्याग के भाव होने से कषाय में मंदता हुई जिसके कारण देव आयु का आस्रव होता है।

जो सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं, उनके जीवन में देव-शास्त्र-गुरु के प्रति

Created by Universal Document Converter

भक्ति, धर्म प्रभावना, धर्म और धर्मात्मा के प्रति अत्यंत प्रीति भाव, जीवों के प्रति करुणा भाव, मोक्षमार्ग में तीव्रता से बढ़ने के भावरूप उत्कृष्ट शुभ राग निरन्तर चलता है, जिससे भी देव आयु का आस्रव होता है। सामान्यतया ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य आयु या देव आयु सुखद हैं, रहने योग्य हैं, पर ऐसा नहीं है। चारों ही गतियों में आकुलता है, अतः मनुष्य गति, देवगति के शारीरिक-मानसिक दुःख व सुखरूपी दुःखों से बचने के लिए हमें जिनवाणी के स्वाध्याय से भव रहित अशरीरी भगवान आत्मा का स्वरूप समझ कर अशरीरी पंचम गति की प्राप्ति का ही पुरुषार्थ करना चाहिए।

❀❀❀

**अशुभोदये जनानां नश्यति बुद्धिर्न विद्यते रक्षा।**
**सुहृदोऽपि सन्ति रिपवो विषमविषं जायतेऽप्यमृतम्।।**

अशुभ कर्म का उदय आने पर मनुष्यों की बुद्धि नष्ट हो जाती है, रक्षा का कोई उपाय नहीं रहता, मित्र भी शत्रु हो जाते हैं और अमृत भी विष हो जाता है।

**विशेषार्थ** – रामचन्द्रजी अशुभ कर्म का उदय होने पर लोक विश्रुति के अनुसार सोने के मृग के पीछे दौड़ पड़े; यह बुद्धि विनाश का उदाहरण है। द्वारिका के जलने पर श्रीकृष्ण और बलदेव ने आग बुझाने के लिए समुद्र का जल फेंका तो वह तेल की तरह जलने लगा यह अमृत के विष होने का उदाहरण है।

– **'सुभाषितरत्नसंदोह' से साभार**

Created by Universal Document Converter

# 10

**ज**ब हम अपने चारों ओर देखते हैं, तो विभिन्न प्रकार की आकृतियों वाले मनुष्य, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे दिखाई देते हैं। जो मनुष्य हैं उनमें भी कोई स्त्री है, कोई पुरुष है, कोई नपुंसक है तो कोई गोरा–काला है, मोटा–पतला है तो कोई बहुत लंबा भी है और मोटा भी है, कोई छोटा–सा है लेकिन दुबला–पतला है अथवा मोटा है। किसी का शरीर बिना खाए–पिए व बिना बीमार पड़े बहुत मजबूत है, अनेक काम कर सकता है; जबकि अनेक लोग ऐसे दिखाई देते हैं जो शुद्ध–सात्त्विक, पौष्टिक भोजन करते हैं; परन्तु जब देखो तब बीमार रहते हैं; थोड़े से भी हवा पानी के बदलाव से ही वे बीमार पड़ जाते हैं। किसी का शरीर बहुत सुन्दर है, लेकिन कमजोर है। कोई बहुत बलवान है; लेकिन सुन्दर नहीं है। किसी की आवाज इस तरह की है कि जिसे सुनकर लोग भागने लगते हैं और किसी की आवाज ऐसी है जिसे सुनने के लिए लोग भाग कर आते हैं।

मनुष्य ही अनेक प्रकार के नहीं हैं, पशुओं में भी शेर–चीता–बाघ जैसे भयावह, तो हाथी–घोड़ा, गाय–भैंस, बकरी जैसी विभिन्न आकृतियों व स्वभाव वाले दिखते हैं। वैसे ही पक्षियों में मोर, कोयल, तोते जैसे सुन्दर तो कौआ, गिद्ध, उल्लू, चमगादड़ जैसे अशोभनीय होते हैं। कीड़े–मकोड़े भी कितनी आकृतियों वाले हमें दिखाई देते हैं।

इन सबको देखकर अनेक लोग तो यह समझते हैं कि इतनी विभिन्नता वाली रचना करना किसी सामान्य व्यक्ति का काम नहीं है, यह जो भी रचना हुई है, इसके पीछे कोई बहुत शक्तिशाली रचनाकार चाहिए और वह कोई ईश्वर/भगवान/गॉड होगा, जिसने यह सारी रचना की है।

जैन दर्शन कहता है कि इन सब रचनाओं का कारण एक नाम कर्म

Created by Universal Document Converter

ही है, जो सर्व प्रकार से शरीर के आकार-प्रकार, लिंग, सुन्दरता-असुन्दरता, रंग, स्वर, अंग-उपांग इत्यादि की रचना करता है।

तब हमें यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न होता है कि ऐसा नाम कर्म किन कारणों से बँधता है, जिसके उदय में हमें इतनी विभिन्नताएँ प्राप्त होती हैं? ऐसा शरीर क्यों मिलता है, जिसे लोग देखना नहीं चाहते? ऐसी आवाज/स्वर क्यों प्राप्त होता है जिसे कोई सुनना नहीं चाहता? ऐसा शरीर क्यों मिलता है जिसके कारण हम स्वयं के मुँह पर बैठी मक्खी भी नहीं उड़ा पाते हैं? क्यों हमारा निंदनीय शरीर या निंदनीय आवाज होती है? कमजोर शरीर क्यों होता है?

आचार्य कहते हैं कि जो हमारे मन-वचन-कायरूप योग में वक्रता टेढ़ापन अर्थात् मायाचार सहित प्रवर्तन होता है, उसके कारण ही इस प्रकार के अशुभ नाम कर्म का आस्रव-बंध होता है और जब वह उदय में आता है, तब उसके फल में हमें गंदा, भद्दा, कमजोर व बीमार शरीर प्राप्त होता है। योग की वक्रता से ही तिर्यंच गति में जाकर हमें घृणित शरीर प्राप्त होता है, जिसे कोई देखना नहीं चाहता, अगर छू जाए तो स्नान करना चाहता है।

मन में कुछ और रखते/सोचते हुए, वचनों से कुछ और कहना तथा क्रिया के द्वारा कुछ और करना ही योग की वक्रता है। मन में हम किसी का अपयश चाहते हैं और वचन से उसकी प्रशंसा करते हैं जबकि हम अपनी क्रियाओं के माध्यम से ऐसे ही कार्य करते हैं जिससे कि उसका अपयश हो जाए।

दिखने में लोग भले दिखते हैं; लेकिन अन्दर से भाले का काम करते हैं, इसीलिए लोग कहा करते हैं कि 'ये ऊपर से भोले और अन्दर से भाले हैं।' जो ऐसे भोले-भाले परिणाम वाला जीव है उसे इसी प्रकार के नाम कर्म का बंधन होता है जिसके फल में वक्र/टेढ़ा-मेढ़ा ऊँट जैसा

Created by Universal Document Converter

शरीर मिलता है तो कहीं मोटे गैंड़ा जैसा शरीर मिलता है, तो कहीं सांप जैसा लंबा लेकिन लचीला शरीर प्राप्त होता है, रंग-बिरंगे कीड़े-मकोड़े बनकर उड़ते रहते हैं, मरते रहते हैं।

जो जीव दूसरों को गलत मार्ग पर लगाते हैं, धर्म मार्ग से विपरीत उपदेश देकर उसे सुख का मार्ग बतलाते हैं, चोरी करते हैं, व्यापार-धंधे में नापने-तोलने के बाँट घट-बढ़ रखते हैं, दूसरों की निंदा करते हैं, असत्य वचन बोलते हैं, यदि सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ हो तो अपने आत्मा के सौंदर्य को भूलकर शरीर की सुन्दरता में मुग्ध होते हैं, उसी का घमंड करते हैं, दूसरों के कुरूप शरीर का उपहास करते हैं, जिन मन्दिर को तोड़ते हैं, जिन प्रतिमा का अपमान करते हैं, धर्म का विरोध करते हैं, मायाचारी और लोभ के साथ पाप कर्मों से आजीविका/व्यापार आदि कार्य करते हैं ऐसे वक्र परिणामी अर्थात् टेढ़े-मेढ़े भाव वालों को ही इस प्रकार के बेढंगे-बदरंग कुरूप, बीमार शरीर वाले भव की प्राप्ति होती है।

जो ऐसे भाव करते हैं कि मुझे सब लोग देखते रहें, ऐसे जीव मरकर बगीचों में फूल-पत्ती में जन्म लेते हैं, घास के रूप में जन्म लेकर सबके आकर्षण का केन्द्र बनते हैं। जो विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी दिखाई देते हैं, जैसे - शेर, बाघ, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बन्दर, तोता, कोयल, कबूतर इत्यादि जिनमें कोई बोल रहा है, कोई नाच रहा है - ध्यान रखना यह हमारे ही परिणामों/भावों का फल है। हमने अपने ही भावों को बिगाड़ कर, अपना भव व भविष्य बिगाड़ा है।

दूसरों को रिझाने के लिए धर्म से विरुद्ध आचरण करते हैं, दूसरों को प्रसन्न करने के लिए, अपनी वास्तविक प्रसन्नता को खो देते हैं, अपने सत्य स्वरूप को जानने का प्रयास नहीं करते और उसके फल में ऐसी अवस्थाएँ मिलती हैं।

तिर्यंच गति में जाकर दूसरों को रिझाने/हँसाने में कारण बनते हैं और

Created by Universal Document Converter

स्वयं दु:खी होते रहते हैं। जो जीव दूसरों को बंधन में डालते हैं, बाँधकर रखना चाहते हैं, वे ऐसे पक्षी बनते हैं जिन्हें पिंजरे में बंद कर दिया जाता है। जो दूसरों को सताने का भाव करते हैं, वे ऐसे पशु-पक्षी बनते हैं, जिन्हें अन्य तड़पाते हैं, काटकर खा जाते हैं; जो जीव हिंसक प्रसाधन सामग्री से अपने आप को सजाना-संवारना चाहते हैं, वे ऐसी ही अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं जिनको मारकर इत्र बनाया जाता है, सुगंधित साबुन बनाए जाते हैं, सुगंधित क्रीम-पाउडर बनाए जाते हैं।

इसके विपरीत मन-वचन-काय की सरलता से शुभ नाम कर्म का आस्रव होता है। जो स्व-पर हितकर सोचते हैं, वही कहते और करते हैं, गुणीजनों की प्रशंसा करते हैं, धर्म मार्ग में लगते और लगाते हैं, धर्म मार्ग में लगे हुए जीवों के प्रति वात्सल्य भाव रखते हैं, उन्हें शुभ नाम कर्म का आस्रव होता है, जिससे सुन्दर, मजबूत, नीरोग शरीर की प्राप्ति होती है।

जो ज्ञानी धर्मात्मा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिंतवन करते हैं, पंच परमेष्ठियों, जिनवाणी के प्रति विशेष विनय/बहुमान एवं प्रचार-प्रसार की उदात्त भावना, साधर्मी वात्सल्य, निरपेक्ष पात्र दान, इत्यादि भावनाएँ जिन ज्ञानियों के हृदय में होती हैं, उन्हें तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति का भी आस्रव होता है।

हम अपने भावों से ही अपने भविष्य का निर्माण करते हैं। हमें शाश्वत जैन धर्म की प्राप्ति हुई है, उसका मर्म समझकर हमें अपनी महिमा आवे, शरीर कैसा भी सुन्दर हो या असुन्दर, मजबूत हो या कमजोर, मोटा हो या पतला, स्त्री का हो या पुरुष का, गोरा हो या काला उसका न घमंड करें न दीनता लायें बल्कि शरीर से भिन्न शरीर में रहने वाले चिदानन्द परमात्मा का अवलोकन करें, तभी हमारा जीवन/भविष्य सुखद बन सकता है।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

# 11

**इ**स विश्व में हमें अनेक प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं। बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनके परिवार में धर्माचरण नहीं है, मद्य-मांस का सेवन होता है, चोरी-भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अश्लील गाली-गलौज जिनके लिए सहज है, जिनका समाज, संस्था, राजनीति में कोई स्थान नहीं है; जिन्हें लोग अपमानित करते हैं, दुत्कारते हैं, तिरस्कृत करते हैं; जिनका जीवन निंदनीय होता है, जिनके साथ लोग किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहते हैं।

दूसरी ओर इस तरह के व्यक्ति भी दिखाई देते हैं जिनका आचरण, व्यवहार, वार्तालाप बहुत प्रशंसनीय है; जिन्होंने ऐसे परिवार में जन्म लिया है जहाँ सदाचार, यत्नाचार का पालन किया जाता है, धर्ममय जीवन होता है, जिनका सभी सम्मान करते हैं, विनय करते हैं, संस्थाओं, समाज, राजनीति, व्यापार सर्वत्र जिनको पदाधिकारी बनाया जाता है, जिनसे मंचों की शोभा होती है, जिनके वचनों को सुनने के लिए सभाएँ लालायित रहती हैं।

उक्त प्रकार का भेद गोत्र कर्म के कारण होता है, जिनके नीच गोत्र कर्म का उदय होता है उनका नीच कुलों में जन्म होता है; आचार-विचार, व्यवहार निंदनीय होता है; समाज, संस्था में कोई स्थान नहीं होता; सभी नीच, कमीना, बेईमान, लुच्चा, लफंगा, इत्यादि कहकर तिरस्कार करते हैं।

जिनके उच्च गोत्र कर्म का उदय होता है उनका उच्च कुल में जन्म होता है, आचार-विचार, व्यवहार सभी प्रशंसनीय होता है, सभी विनय-सम्मान किया करते हैं।

इस प्रकार के उच्च गोत्र कर्म का आस्रव कैसे होता है? हमें ऐसे

Created by Universal Document Converter

भव/कुल की प्राप्ति कैसे होती है या भविष्य में होगी, जहाँ सदाचारमय जीवन हो, हम स्वयं प्रसन्न रहें और दूसरों की प्रसन्नता में कारण बनें, दूसरों के सम्मान के योग्य बनें ?

जो जीव दूसरों की निंदा, अपनी प्रशंसा किया करते हैं, दूसरों के अच्छे गुणों को देखते हुए भी, कोई दोष हो तो उसे उछालते/प्रकट करते हैं, जो अपने आपको ज्ञान, पूजा (यश-सम्मान) धन, बल, कुल, जाति, रूप, तप, ऋद्धि आदि से बड़ा समझते हैं, दूसरों को अपमानित करते हैं, दूसरों की हँसी-मजाक करते हैं, गुरुओं का अपमान करते हैं, गुरुओं को स्थान नहीं देते हैं, गुरुओं से अशिष्ट वचन बोलते हैं, गुरुओं का योग्य सम्मान नहीं करते हैं, जिन्हें दुराचरण व दुराचारी पसन्द हैं, जो दुराचारियों की संगति करते हैं, दुराचारियों की प्रशंसा करते हैं, अपनी उच्चता दिखलाते हैं, अन्य का यश बिगाड़ते हैं, कोई दान देता हो तो उसे 'दिखावे के लिए दे रहे हैं, मान के लिए दे रहे हैं या दो नंबर का दे रहे हैं' - इस प्रकार उनका यश घटाना चाहते हैं, तत्त्व-प्रचार में लगे हुए जीवों को देखकर ऐसा कहते हैं कि 'ये तो अपने नाम के लिए करते हैं, इनको सम्मान मिलता है, इनको पुरस्कार मिलता है अथवा ये फुर्सत में है इसलिए इन कामों में लगे रहते हैं' - इस प्रकार तत्त्व प्रचार-प्रसार में व्यवधान करते हैं, तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा भंग करते हैं, उन्हें नीच गोत्र का आस्रव होता है और उसके फल में ऐसे कुलों में जन्म होता है जहाँ इसी प्रकार का वातावरण मिलता है अर्थात् कलह, व्यसन, भ्रष्टाचार, असभ्यता, अनैतिकता व्याप्त होती है, उनके बीच ही पूरा जीवन बिताना होता है जिसके फल में अन्य सभी की तुलना में वे अपने आपको तिरस्कृत अनुभव करते हैं, नीच अनुभव करते हैं।

इसके विपरीत जो जीव अपने दोषों की निंदा करते हैं, अपने गुणों की स्वयं प्रशंसा नहीं करते; अन्य गुणीजनों की प्रशंसा करते हैं, उनका सम्मान करते हैं, यदि किसी साधर्मी/गुणीजनों में कोई दोष हो तो उसे

Created by Universal Document Converter

छुपाते हैं; जो जाति, कुल, बल, रूप, ज्ञान, तप, प्रभुता, ऐश्वर्य में अधिक होने पर भी अपनी उच्चता नहीं दिखलाते, वरिष्ठ जनों की अवज्ञा नहीं करते; किसी दूसरे का हास्य नहीं करते, निंदा नहीं करते, दोषापवाद नहीं करते; धर्मात्मा व्यक्तियों का सम्मान करते हैं, नम्रीभूत होकर उनकी विनय करते हैं; अपने में यदि कोई अच्छे गुण/विशेषता/प्रतिभा हो तो उसका अहंकार नहीं करते, अपने गुणों/प्रतिभा को विनम्रता पूर्वक स्वीकार करते हैं।

जिस प्रकार वृक्ष फलों से लदे होने पर झुक जाते हैं, उसी प्रकार जो अनेक प्रकार की प्रतिभाएँ/विशेषताएँ पाकर विनम्र होते हैं, दूसरों की प्रतिभा का सम्मान करते हैं, दूसरों का यश फैलाते हैं, निर्दोष धर्म की प्रभावना चाहते हैं, सदाचार/शिष्टाचार/यत्नाचार/श्रावकाचार का पालन करते हैं, अपनी लघुता व्यक्त करते हुए दूसरों को सम्मान देते हैं – ऐसे जीवों को उच्च गोत्र कर्म का आस्रव होता है जिसके फल में उच्च कुलों में जन्म होता है। देवगति में जाकर यश पाते हैं, ऋद्धियाँ पाते हैं, मनुष्य गति में भी ऐसी जाति/समाज धर्म के वातावरण में जन्म होता है, जहाँ सभी लोग सम्मान करते हैं, जहाँ धर्माचरण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है, धर्म आराधना करने का अवसर प्राप्त होता है, कदाचित् कोई गलती भी हो जाए तो भी अपवाद नहीं होता है।

हमारे जीवन की विडंबना यह है कि हम सम्मान चाहते हैं, पर सम्मान देना नहीं चाहते, 'हमारे गुण सभी जानें' – ऐसा तो हम चाहते हैं; पर दूसरों के गुणों को स्वीकार नहीं करते, दूसरों के गुणों की प्रशंसा नहीं करते, दूसरों के गुण/यश को देखकर ईर्ष्या होती है, प्रतिस्पर्धा होती है, 'कैसे दूसरों का यश, नाम, पद बिगड़ जाए' – इसका प्रयास करते हैं; हम में जो गुण नहीं है वह भी हम कल्पित करके दूसरों तक पहुँचाते हैं, योग्यता न होने पर भी हम पदासीन होना चाहते हैं, योग्य व्यक्ति को अपनी चालबाजी से पदच्युत करना चाहते हैं – ऐसे परिणाम हमें नीच

Created by Universal Document Converter

गोत्र का आस्रव कराएँगे और यदि हम योग्य व्यक्ति को योग्य समय पर योग्य विधि से सम्मान देते हैं, दूसरों के गुणों की प्रशंसा करते हैं, कोई अपनी प्रशंसा करे तो विनम्रता पूर्वक आभार व्यक्त करते हैं, श्रावकाचार-सदाचार हमें अच्छा लगता है, अहिंसक जीवन जीना चाहते हैं, अन्याय-अनीति-अभक्ष्य से बचकर करुणा बुद्धि पूर्वक, यत्नाचार पूर्वक आहार-विहार करते हैं तो उच्च गोत्र का आस्रव होता है और जिसके फल में हमें लोक में सम्मान प्राप्त होता है, पद प्राप्त होता है।

इस तरह हम नीच गोत्र और उच्च गोत्र कर्म को समझकर, साथ ही आगम से इस बात को समझ कर कि सच में 'प्रत्येक आत्मा समान है, कोई छोटा बड़ा नहीं है। प्रत्येक आत्मा अनादि-अनन्त एवं अनन्त गुणों का भंडार है। जीव को अपनी भूल/ अपराध/अज्ञान/मोह-राग-द्वेष, कषाय-पापभाव करते हुए वर्तमान की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं।

अवस्था तो बदलने वाली है, परिस्थितियाँ सभी की निरन्तर बदलती हैं, बदलती रहेंगी। हम स्वयं को व अन्य समस्त जीवों को उन परिस्थितियों से भिन्न, वर्तमान में होने वाले राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि भावों से भिन्न ज्ञान और आनन्द स्वभावी, अनादि-अनन्त, चैतन्य परमात्मा के रूप में देखें। 'सभी जीव सिद्ध समान हैं' - यह स्वीकार करें। जो वर्तमान में पापी है, वही भूल सुधार कर परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक संसारी जीव भूला हुआ भगवान है। यदि यह बात समझ में आएगी, तो हम किसकी निन्दा करें और किसकी प्रशंसा करें, हम अपने आपको किन के सामने बड़ा सिद्ध करें और किसको हम अपने से छोटा समझें? छोटे-बड़े की भावना मान का आधार है। यदि हम सबको समान समझेंगे तो मान की भावना ही नहीं होगी और हम सब समान हैं तो जहाँ सभी समान होकर रहते हैं - ऐसी सिद्ध दशा को भी प्राप्त कर सकेंगे, गोत्र कर्म का अभाव कर भविष्य में अगुरुलघुत्व गुण प्रकट कर सकेंगे। ❀❀❀

Created by Universal Document Converter

# 12

**प्रा**यः हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति दान करना चाहता है पर दे नहीं पाता, धन–पद–यश प्राप्त करना चाहता है; परन्तु प्राप्त नहीं होता; अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ खाना चाहता है, लेकिन खाने को नहीं मिलते या मिलते हैं तो खा नहीं पाता; अनेक प्रकार के वस्त्र–आभूषण, कार, बंगला इत्यादि का उपभोग करना चाहता है; परन्तु नहीं कर पाता; बहुत काम करने की इच्छा है, चलने, आने–जाने, याद करने, बोलने–सुनने–सुनाने की बहुत भावना है; परन्तु कोई भी कार्य निर्विघ्न/निर्बाधरूप से नहीं कर पाता। अनेक प्रकार के विघ्न–बाधाएँ इन सभी कार्यों में आती हैं। ऐसा कोई भी व्यक्ति इस पंचम काल में दिखाई नहीं देता जिसके निर्बाध रूप से पुण्य का उदय चल रहा हो, सभी प्रकार की अनुकूलताएँ हों। इन सबका क्या कारण है?

यह तो हम समझ ही चुके हैं कि बिना कारण के कार्य नहीं होता। यदि हमारे जीवन में उक्त कार्य होते हैं और ये कार्य हमें पसंद नहीं हैं; हम चाहते हैं कि ऐसे कार्य भविष्य में हमारे जीवन में न हों तो इसके लिए हम उन कार्यों के होने पर रोयें, परेशान हों, भगवान को याद करें, रिश्तेदारों को याद करें, सहयोगियों को बुलाएँ और न आने पर उनको भला–बुरा कहें उससे अच्छा है कि इन कार्यों के जो कारण हैं, उनको पहचाने। उन कारणों से यदि हम बचते हैं तो निश्चित ही भविष्य में हमें दान–लाभ–भोग–उपभोग इत्यादि में विघ्न–बाधाएँ नहीं होंगी। इतना ही नहीं, यदि हम सन्मार्ग पर चलते रहे तो, अनंत काल तक के लिए क्षायिक लब्धियाँ प्रकट हो जाएँगी, हम अनंत सुखी हो जाएँगे।

जब किसी को दान देते हुए देखते हैं तो हमारे मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है, हम उसकी प्रशंसा न करके किसी न किसी रूप में उसमें दोष

Created by Universal Document Converter

निकालते हैं, जिस कार्य के लिए दान दिया जा रहा है, उसकी अनुपयोगिता बतलाते हैं, हम स्वयं दान नहीं देते, दूसरों को देने नहीं देते, देने वाले की निन्दा करते हैं, शिविर लगने, स्वाध्याय चलने, कक्षा-पाठशाला चलने में व्यवधान करते हैं, निर्दोष औषधि साधर्मियों तक पहुँच सके उसकी उपेक्षा करके अशुद्ध औषधि की प्रशंसा करते हैं, जीवों को भयभीत करते हैं, जो निर्भय करने वाला है उसे प्रताड़ित करते हैं - इस प्रकार हम दान देने की प्रक्रिया में व्यवधान उत्पन्न करते हैं तो उसके फल में ऐसे कर्म का आस्रव होता है कि जब हम दान देना चाहते हैं, तो दान नहीं दे पाते। हमारे परिवार वाले हमारी दान देने की भावना का तिरस्कार करते हैं, दान देने में रोड़ा अटकाते हैं और हमारी भावनाएँ मन की मन में ही रह जाती हैं।

इसी तरह अन्य किसी को जिस समय लाभ हो रहा हो, हम उसे लाभ होने में अन्तराय करते हैं, किसी को धन-पद प्राप्त न हो जाए, यदि हो गया है तो कैसे उसका नुकसान हो जाए, कैसे उसे पदच्युत कर दिया जाए - इस प्रकार के षड्यंत्र रचते हैं, जिसे यश मिल रहा है, उसका अपयश फैलाते हैं तो जब हम स्वयं धन-पद-यश का लाभ चाहते हैं, उस समय ऐसे अनेक प्रसंग बनते हैं जिससे हम तरसते/तड़पते रह जाते हैं परन्तु हमें न नाम का लाभ होता है, न मान मिलता है, न स्वास्थ्य का लाभ होता है, न पद का लाभ होता है।

जब हम किसी को खाने-पीने के समय में अंतराय करते हैं, किसी पशु-पक्षी को खाते समय प्रताड़ित करते हैं, उसका भोजन छीनते हैं, किसी के व्यापार में नुकसान करते हैं, जिसे वह अपनी रोजी-रोटी समझता है उसमें अंतराय करते हैं, किसी की नौकरी चली जाए - ऐसा प्रयास करते है, जब कोई भोजन कर रहा हो, उस समय उसे जानबूझकर थाली से उठकर काम करने भेज देते हैं, खाते समय किसी की वस्तु छीन

Created by Universal Document Converter

लेते हैं - इन कार्यों/भावों से ऐसे कर्म बँधते हैं कि जब हम भूख लगने पर भोजन करना चाहते हैं, विविध प्रकार के व्यंजनों का भोग करना चाहते हैं, तब हमें सामान्य भोजन भी नहीं मिलता, व्यंजनों की तो बात ही दूर रही।

जब हम किसी के वस्त्राभूषण छीनते हैं, चुरा लेते हैं, छुपा देते हैं, वाहन-भवन, वस्त्र इत्यादि वस्तु जिनका बार-बार प्रयोग किया जा सकता है, उसे उपभोग कहा जाता है। उपभोग की सामग्री को जब हम चाहे मनुष्य हो चाहे तिर्यंच, उनसे छीनते हैं, उपयोग करने में व्यवधान करते हैं, प्रताड़ित करते हैं, तब ऐसे कर्मों का बंधन होता है कि हमें भी पहनने को वस्त्र नहीं मिलते, श्रृंगार करने के लिए आभूषण नहीं मिलते, रहने को मकान नहीं मिलता, घूमने को वाहन नहीं मिलते, यदि मिल गया हो तो छीन लिया जाता है अथवा होते हुए भी हम अन्य कारणवश उसका प्रयोग नहीं कर पाते और दुःखी ही होते रहते हैं।

हम अन्य किसी को पढ़ने नहीं देना चाहते, काम नहीं करने देना चाहते, उसकी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं, अपनी शक्ति को छुपाते हैं, शक्ति होते हुए भी हम काम न करके प्रमादी बनते हैं, तब हमारी शक्ति भी छुप जाती है। मानो प्रकृति कहती है कि जब आपको शक्ति पसन्द ही नहीं है, आप कोई अच्छा काम न स्वयं कर रहे हैं, न दूसरों को करने दे रहे हैं तो अब भविष्य में आपका जब मन होगा कि मैं मोक्षमार्ग पर चलूँ, धर्म कार्य करूँ, व्रत उपवास करूँ, जिनवाणी को कंठस्थ करूँ, समझूँ, दो-चार घंटे बैठकर स्वाध्याय करूँ, तब आपकी सामर्थ्य ऐसी हो जाएगी कि घंटों की तो बात ही क्या है, मिनटों भी आप पढ़ नहीं पाएँगे, एक पंक्ति याद नहीं कर पाएँगे, चल नहीं पाएँगे, कह नहीं पाएँगे सारी शक्ति ही छिप जाएगी।

इस तरह जो दान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य अर्थात् शक्ति में

Created by Universal Document Converter

अंतराय करता है, दूसरों को परेशान करता है, दूसरों के दान करने, वस्तु प्राप्त करने या खान-पीने के समय में व्यवधान करता है, उसे ऐसे कर्मों का बंधन होता है।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि यदि कोई व्यक्ति शराब पी रहा हो या मांस-अंडा खा रहा हो या चोरी करने जा रहा हो - ऐसे कार्यों को करने से यदि हम उसे मना करेंगे/रोकेंगे तो क्या हमें अंतराय कर्म का आस्रव होगा?

ऐसा करने से कर्म का आस्रव नहीं होगा क्योंकि गलत कार्य से रोकने में हमारी भावना उसे सही मार्ग पर लगाने की है। वह पाप करके नरक-तिर्यंच गति में जाकर अनन्त दुख भोगेगा इसलिए हम करुणा पूर्वक हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह पापों से रोकते हैं, अभक्ष्य भक्षण से रोकते हैं, शराब पीने से रोकते हैं, अज्ञानतापूर्ण अंधविश्वास से रोकते हैं, हम उसका हित ही चाहे रहे हैं, अहित नहीं कर रहे हैं इसलिए सच में ऐसा करने से पाप नहीं बँधेगा, पुण्य ही बँधेगा।

हमें यह सौभाग्य प्राप्त है कि हम मनुष्य हैं, हमें जिनवाणी प्राप्त हुई है, हम इस बात को अच्छी तरह से समझें कि हो सकता है कि कभी आप दान कर सकें या न कर सकें, आपकी स्थिति/परिस्थिति कुछ देने की न हो, तो भी किसी अन्य को देते हुए मना न करें। यदि जिन मन्दिर निर्माण में, जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में, विद्यालय-पाठशाला के संचालन में कोई अपना तन-मन-धन से सहयोग कर रहा है, तो उसकी अनुमोदना करें। जो पढ़ने-पढ़ाने वाले हैं उनको कोई व्यवस्था, सम्मान, स्नेह दे सकें तो बहुत अच्छी बात है, यदि न भी दे सकें तो कम से कम करने वालों की अनुमोदना करें और 'ये कार्य निरन्तर चलते रहें', हमारे समाज में शुद्ध आहार दान करने वाले, सम्यग्ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने वाले, साधर्मियों का सहयोग करने वाले निरन्तर वृद्धिंगत हों - ऐसी

Created by Universal Document Converter

भावना भायें। जब किसी को कोई लाभ हो रहा हो, किसी को उसके पुण्य के उदय से पद-पैसा, प्रतिष्ठा-सम्मान प्राप्त हो रहा हो तो ईर्ष्या न करें; उसने निश्चित ही पूर्व में तो अच्छे काम किये ही होंगे, वर्तमान में भी कुछ अच्छे कार्य किए होंगे, तभी तो समाज उसे पद-पुरस्कार सम्मान दे रही है; जो आप द्वेषवश देख नहीं पा रहे हैं। अच्छे कार्यों की सदा अनुमोदना करें। किसी के भी खाने-पीने के समय व्यवधान न करें, किसी के वस्त्राभूषण छीनने में अपना उपयोग न लगे, किसी को नुकसान पहुँचाने की भावना मन में न भायें, किसी की धन-संपत्ति चोरी हो जाए - ऐसा न सोचें; सभी जीव सुखी हों, सभी सन्मार्ग पर चलें, कोई दुःखी न हो, कोई बीमार न हो, कोई शक्तिहीन-ज्ञानहीन न हो, सभी धर्म मार्ग पर चलकर सुखी हो सकें - इस प्रकार की पवित्र भावनाएँ भायेंगे तो हमें भी जीवन में कभी दान-लाभ- भोग-उपभोग में अन्तराय, विघ्न नहीं होगा और सन्मार्ग पर चलते हुए ऐसा अवसर आएगा कि हम आठों ही कर्मों का अभाव करके अष्ट गुण प्रकट कर अष्टम वसुधा को प्राप्त कर लेंगे।

❀❀❀

## कालचक्र

जो कहते थे 'मेरे बिना पत्ता नहीं हिलता।'
आज वे स्वयं सूखे पत्ते से हिल रहे हैं।।
जो कहते थे 'मेरे इशारे पर नाचती है दुनिया।'
आज वे दुनिया के इशारे पर नाच रहे हैं।।
जो कहते थे 'मेरे दम से लोग खड़े होते हैं।'
वे आज अपने पैरों खड़े नहीं हो पा रहे हैं।।
जो कभी स्वागत-सम्मान से त्रस्त हो जाते थे
आज वे अपमानों के घूंट पिए जा रहे हैं।।

Created by Universal Document Converter

# 13

**ह**में जो भी बाह्य संयोग प्राप्त होते हैं उन्हें नोकर्म कहा जाता है। नोकर्म मिलने का कारण द्रव्य कर्म का उदय है, द्रव्य कर्मों के आस्रव-बंध का कारण मोह-राग-द्वेष आदि भाव होते हैं, जिन्हें भाव कर्म कहते हैं। इस तरह सच में तो हमारे भाव ही हमें प्राप्त संयोगों के कारण हैं। जो भी परिस्थितियाँ बन रही हैं, उन सबके कारण हमारे ही भाव हैं।

लोक में जीवों के जीवन में शारीरिक/पारिवारिक/सामाजिक अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। कोई जीव अंधा, बहरा, गूंगा, विकलांग, पुत्र रहित-पुत्रवान, निर्धन-धनवान, यशस्वी, सुन्दर होता है तो इनका कारण जानना आवश्यक है, क्योंकि हम अशुभ परिस्थितियों से बचना चाहते हैं और शुभ अर्थात् अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त करना चाहते हैं। हमारे या हमारे परिजनों/मित्रों के जीवन में जो विविध प्रकार की घटनाएँ घटित होती हैं, उनके कारण रूप भावों को हम जानेंगे जिससे कि हम उन दुर्भावों को पहचान कर उनसे बच सकें और जो शुभ भाव हैं, उन्हें धर्म मार्ग पर चलने के योग्य वातावरण प्राप्त कर सकें।

जो जीव नेत्र होते हुए भी उनका उपयोग नहीं करते, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के दर्शन नहीं करते, जिनवाणी का पठन-पाठन नहीं करते, यत्नाचारपूर्वक देखकर नहीं चलते, कार्य करते हुए जीवों की रक्षा नहीं करते, अन्य किसी के नेत्रों को पीड़ा देते हैं, अन्य किसी को देखने में अंतराय करते हैं, बिना देखे हुए को भी 'मैंने देखा है' - ऐसा कहते हैं, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को देखकर उनकी प्रशंसा करते हैं, 'सच में तो नेत्र रहित भगवान आत्मा ही देखने योग्य हैं और बाहर में जिन रूप ही देखने योग्य है, जिन वचन ही पढ़ने योग्य हैं' - इस बात को जाने-समझे बिना अपने नेत्रों का दुरुपयोग करते हैं, वे भविष्य में अंधे होते हैं।

Created by Universal Document Converter

जो व्यक्ति कर्ण इन्द्रिय पाकर भी जिनेन्द्र भगवान के वचनों को नहीं सुनते, दूसरों के गुणों की प्रशंसा सुनना जिन्हें पसन्द नहीं है, जो निन्दा सुनने हेतु निरन्तर आतुर रहते हैं, जो दूसरों के कानों को पीड़ा पहुँचाते हैं, किसी बधिर व्यक्ति को देखकर उसका मजाक करते हैं, उसे सहयोग नहीं करते हैं, गुरुजनों के शब्दों को सुनकर भी उनका तिरस्कार करते हैं, वे बहरे होते हैं।

जो जीव रसना इन्द्रिय (जीभ) प्राप्त कर बोलने का शुभ अवसर प्राप्त करता है; परन्तु देव-शास्त्र-गुरु का गुणानुवाद नहीं करता, सत्य वचन नहीं बोलता, विकथाएँ करता है, विषय-कषाय की कथाओं-वार्ताओं में जिसका मन लगता है, जो नहीं बोलने योग्य वचनों को सबके बीच बोलता है, अपशब्द, निन्दाकारक, कलहकारक शब्द बोलता है; जो विषय लोलुपी होकर अभक्ष्य सेवन करता है – ऐसा जीव गूंगा होता है।

जो जीव पैरों को पाकर जिन मन्दिर नहीं जाता, तीर्थ की यात्रा नहीं करता, योग्य स्थान पर जाने में प्रमाद करता है और अयोग्य स्थान में व्यर्थ ही घूमता है, अन्य जीवों के पैरों को बाँधता है, काटता है, वह लंगड़ा होता है।

जो जीव हाथ होते हुए भी दान नहीं देता, परोपकार नहीं करता, जिनेन्द्र भगवान की पूजन नहीं करता, वह लूला होता है।

जो जीव अन्य जीवों के अंग-उपांग का छेदन-भेदन करता, कराता या अनुमोदन करता है, किसी दिव्यांग/विकलांग को देखकर हर्षित होता है, उसकी मजाक करता है, वह अगले भव में मनुष्य शरीर पाकर विकलांग होता है।

जो जीव देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करता है, जिन वचनों को सुनता है, सुनाता है, परोपकार करता है, दान देता है, अन्य जीवों की

Created by Universal Document Converter

रक्षा करता है, चार प्रकार के दानों में अपनी रुचि रखता है वह पूर्ण अंगी होकर सुन्दर शरीर को प्राप्त करता है।

जो जीव धन पाकर अभिमान करता है, धन का सदुपयोग नहीं करता है, केवल परिग्रह जोड़कर उसका रखवाला बनकर रहता है, पाँच इन्द्रियों के विषयों में खर्च करता है परन्तु दान नहीं करता है, दान में घोषित राशि को समय पर नहीं देता है, निर्माल्य अर्थात् देव सामग्री या मन्दिर की सामग्री का उपयोग करता है, धर्मादे (दान राशि) की राशि का गबन करता है, धार्मिक पदों पर रहकर पदों का दुरुपयोग करते हुए व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति करता है, वह भविष्य में निर्धन-दरिद्र होकर भिखारी बनकर भीख माँगता फिरता है।

जो जीव न्याय पूर्वक व्यापार करके धन कमाते हैं और पुण्य उदय से प्राप्त धन को दानादि कार्यों में खर्च करके धन का सदुपयोग करते हैं, साधर्मियों का सहयोग करते हैं, मन्दिर निर्माण, तीर्थ रक्षा, तत्त्व प्रचार-प्रसार में सरलता पूर्वक, निरपेक्ष व निष्पृहभाव से दान आदि करते हैं, किसी का पैसा दबाते नहीं हैं, परोपकार में धन खर्च करते हैं, वे भविष्य में धनवान बनते हैं।

जो जीव अन्य जीवों के पुत्र-पुत्री को देखकर ईर्ष्या करते हैं, दूसरों के पुत्र प्राप्ति के समाचार पाकर दुःखी होते हैं, अन्य के पुत्र का मरण देखकर प्रसन्न होते हैं, पिता पुत्र अथवा माता पुत्र को अलग करते हैं, उनमें झगड़ा कराते हैं, वे भविष्य में पुत्र रहित होते हैं अथवा ऐसी संतान प्राप्त करते हैं, जो उनको जीवन भर दुःखी करती है।

जो जीव अन्य के पुत्रों को देखकर प्रसन्न होते हैं, उनके दीर्घायु होने की भावना भाते हैं, धर्म मार्ग में लगाने का प्रयास करते हैं, वे जीव सुन्दर, बुद्धिमान, आज्ञाकारी पुत्र को प्राप्त करते हैं।

Created by Universal Document Converter

जो जीव दान राशि घोषित करके फिर अपने परिणामों को गिराते हैं अर्थात् ऐसा सोचते हैं कि मैंने इतनी राशि क्यों बोल दी ? मुझे कम बोलना चाहिए था, अब हम राशि धीरे-धीरे देंगे या बाद में देंगे या कम देंगे - ऐसे जीव भविष्य में प्रारम्भ में धनवान होते हैं और बाद में निर्धन हो जाते हैं। इससे विपरीत जो जीव दान आदि की राशि बोलकर बाद में विचार करते हैं कि अरे! मैंने कम क्यों बोला ? वहाँ इतनी अधिक आवश्यकता है और मेरे पास धनराशि है भी, तो मुझे अधिक देना चाहिए। मैं बिना घोषणा के ही वहाँ राशि दे दूँगा और वे वहाँ पर सहयोग करते हैं, नाम की अभिलाषा नहीं रखते हैं, अपने भावों को निरन्तर बढ़ाते रहते हैं, वे जीव भविष्य में कदाचित् निर्धन होते हैं, लेकिन धीरे-धीरे वह बहुत धनवान हो जाते हैं।

जो जीव सच्चे देव-गुरु-धर्म की आराधना करते हैं, महापुरुषों की कथा वार्ता सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन जैसा बनने की भावना भाते हैं, दूसरों के गुणों की प्रशंसा करते हैं, उन गुणों को अपने जीवन में उतारने की भावना रखते हैं, पर-निन्दा से बचते हैं, विनय पूर्वक माता-पिता, गुरुजनों की सेवा करते हैं, वे भविष्य में यशस्वी होते हैं।

जो व्यक्ति देव-शास्त्र-गुरु की विराधना करता है, धर्मात्माओं की निन्दा करता है, अन्य के गुणों की निन्दा करता है, दोषों की प्रशंसा करता है, बड़ों की आज्ञा नहीं मानता, अन्य का अनादर करता है, किसी गरीब को देखकर या पद में छोटा देखकर उसका अपमान करता है - ऐसा जीव भविष्य में अपयश प्राप्त करता है।

जो जीव योग्य काल में विनय पूर्वक आगम का अभ्यास करते हैं, अन्य को अध्ययन कराते हैं, निरपेक्ष भाव से धर्म उपदेश देते हैं, जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में तन-मन-धन, कृत-कारित-अनुमोदना से संलग्न रहते हैं, तत्त्व विचार करते हैं, तत्त्वरसिक-जनों का आदर

Created by Universal Document Converter

करते हैं, सत्संगति करते हैं, ज्ञान दान में निरन्तर समर्पित रहने की भावना भाते हैं, ज्ञान का अहंकार नहीं करते हैं, वे जीव विद्वान पण्डित बनते हैं।

जो प्रकट ज्ञान का अहंकार करते हैं, विनय रहित होकर जिनवाणी पढ़ते हैं, जिनवाणी की अवहेलना करते हैं, अनादर करते हैं, पढ़ने योग्य पढ़ते नहीं है, जो विषय कषाय की पोषक विकथाओं की चर्चा में संलग्न रहते हैं, विद्वानों साधर्मियों का तिरस्कार करते हैं, कुधर्म के प्रचार-प्रसार में अपने आपको लगाते हैं, सन्मार्ग में लगे सज्जनों की मजाक करते हैं, स्वाध्याय को व्यर्थ बताते हैं, शास्त्रों को रद्दी में फेंकते हैं, बेचते हैं – ऐसे जीव निर्बुद्धि/दुर्बुद्धि होकर मूर्ख बनते हैं।

अन्याय-अनीति से प्राप्त धन का उपयोग करने वाले परिवारों में कलह होती है, भाई-भाई ही नहीं, पिता-पुत्र और पति-पत्नी भी व्यसनी/दुराचारी होकर धन-धर्म व शरीर नष्ट करते हैं। अन्याय से कमाया हुआ धन, नाम-मान की भावना से संस्थाओं में दिया-लिया जाता है तो वहाँ भौतिक उन्नति तो होती दिखती है पर कालान्तर में पदाधिकारियों, ट्रस्टियों में क्लेश/प्रतिस्पर्धा/विवाद का कारण बनता है।

इस तरह यह निरन्तर विचारने योग्य है कि हमारे लिए जो कुछ भी परिस्थितियाँ बन रही हैं, वे सब हमारे ही भावों का फल हैं, हमारे भाव ही हमारे भविष्य के निर्माता हैं। लोक में कहा जाता है – 'जो बोयेंगे, वह काटेंगे।' 'जैसा करेंगे-वैसा भरेंगे।' 'जैसी हमारी मति होगी, वैसी हमारी गति होगी।' "जैसे हमारे भाव होंगे, वैसे ही हमारे भव और भविष्य होगा।' हमारे भविष्य को बनाने, बिगाड़ने, बदलने वाला और कोई नहीं है; हम ही अपने वर्तमान द्वारा अपने भविष्य के निर्माता हैं।

Created by Universal Document Converter

भूतकाल में हम जो करके आए हैं उसका फल हमें अभी मिल रहा है और जो वर्तमान में करेंगे उसका फल भविष्य में मिलेगा। भूतकाल बीत चुका है, भविष्य का हमें पता नहीं है, वर्तमान ही हमारे पास है, इसीलिए कहा जाता है 'भूतकाल सपना है, भविष्य काल कल्पना है, वर्तमान ही अपना है।'

यह भी एक सुखद तथ्य है कि भूतकाल में हम कोई भी पाप कार्य करके आए हों, उन्हें भी हम अभी के परिणामों से बदल सकते हैं। वर्तमान में हम यदि बहुत उत्साह, लगन, रुचि, यत्नाचार, आत्महित की भावना पूर्वक देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, विवेकपूर्वक ही व्यापार-आहार-विहार करते हैं, सन्तोष भावपूर्वक धन कमाते हैं, प्राप्त साधनों का परोपकार की भावना से सदुपयोग करते हैं तो भूतकाल में बाँधे हुए पाप कर्म भी संक्रमित होकर पुण्य रूप हो सकते हैं, जो पाप कर्म की स्थिति बँधी हुई है, वह कम हो सकती है और यदि हम इसके विपरीत आचरण करते हैं तो पुण्य भी पाप रूप हो सकता है, पुण्य की स्थिति कम हो सकती है।

इस तरह हम वर्तमान के भावों से भूतकाल के कर्मों का भी उत्कर्षण-अपकर्षण, संक्रमण कराकर लाभ ले सकते हैं। वर्तमान में हम अच्छे भाव करेंगे तो आनन्द आएगा ही और वर्तमान के प्रशस्त/शुभ भावों से पुण्य कर्म प्रकृतियाँ बँधेगी तो भविष्य में भी हमें और धर्म आराधना करने के अवसर प्राप्त होंगे, सत्समागम मिलेगा, साक्षात् समवशरण भी मिल सकता है और हम आत्महित के मार्ग पर चलते हुए भव का अभाव करके सिद्ध पद प्राप्त कर अनन्तानन्त काल तक अनन्त सुख प्राप्ति रूप अपने भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

❀❀❀

Created by Universal Document Converter

परिशिष्ट-1

# जैसा भविष्य, वैसे भाव

पूर्व प्रकरण में हमने समझा है कि 'जैसे भाव होंगे, वैसा भविष्य होगा।' आगम में ही इस प्रकार के भी कथन/प्रसंग मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि 'जैसा भविष्य होगा, वैसे भाव होंगे।' तो क्या इन कथनों में परस्पर विरोध है या इन दोनों कथनों में एक मिथ्या है?

सच में इनमें कोई विरोध नहीं है न ही कोई मिथ्या है; बस इन कथनों को हमें योग्य दृष्टि से समझना आवश्यक है।

जिनागम नयों की शैली में लिखा गया है अथवा कहें तो आगम में एक तो सैद्धान्तिक कथन होता है और एक उपदेशात्मक/प्रेरक/क्रिया प्रधान कथन होता है। सिद्धान्त का निरूपण मुख्य रूप से निश्चय नय के द्वारा किया जाता है और उपदेश का निरूपण व्यवहार नय द्वारा होता है। जैसे भाव वैसा भविष्य यह चरणानुयोगपरक और जैसा भविष्य वैसे भाव यह द्रव्यानुयोगपरक कथन है।

हमने अभी जो प्रकरण तत्त्वार्थसूत्र के माध्यम से पढ़ा/जाना/समझा है वह व्यवहार नय की मुख्यता से है, उसमें उपदेश/प्रेरणा है। आगे बढ़ने, परिणाम सम्हालने हेतु सद्गुरु का शिष्य के प्रति अथवा जिनवाणी माता का अपने भव्य पुत्रों के प्रति शुभ सन्देश है। इस प्रकार के कथन जिनवाणी में प्राय: सर्वत्र प्राप्त होते हैं।

वहीं 'जैसा भविष्य, वैसे भाव' यह एक सिद्धान्त है, सच्चाई है, वास्तविकता है। जब हम गम्भीरता से विचार करते हैं, पुराणों में महापुरुषों के जीवन चरित्र देखते हैं तो पाते हैं कि सच में महापुरुषों के अनेक भवों का उल्लेख उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की वाणी में पहले से ही आ गया था। जैसे कि परमाराध्य ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर की दिव्यध्वनि

Created by Universal Document Converter

में आया था कि 'मारीचि का जीव महावीर होगा।' इसका अर्थ हुआ कि जब मारीचि से महावीर तक के बीच के भवों की यात्रा सुनिश्चित है तो उनके कारण रूप भावों का होना भी पूर्व से ही सुनिश्चित है।

इसी तरह श्री नेमिनाथ भगवान ने कहा 12 वर्ष बाद द्वारिका जलेगी और उसके निमित्त भी बतलाए तो इससे स्पष्ट है कि 12 वर्ष के बीच में जो जो भी घटनाएँ/दुर्घटनाएँ होना है उनके योग्य द्वीपायन, जरत्कुमार, श्रीकृष्ण बलदेव या अन्य जो भी जीव हैं उनके जिस प्रकार के भाव होना थे वे सब सुनिश्चित थे। यदि वे भाव या घटनाएँ कोई बदल सकता होता तब तो भगवान की वाणी ही मिथ्या हो जाती।

ऐसे अनेकों प्रकरण हैं जहाँ किन्हीं तीर्थंकर परमात्मा या मन:पर्ययज्ञानी ने कहा कि 'यह जीव, भविष्य में किस गति में जाने वाला है अथवा इसका क्या होने वाला है।'

आगम में यह भी उल्लेख आता है कि भव्य जीव भगवान के प्रभामण्डल में अपने भविष्य के तीन भवों को देख लेते हैं। यह तो एक सुनिश्चित तथ्य है कि तीन भवों की आयु एक साथ नहीं बँधती है। एक बार में एक भव की ही आयु बँधती है, तो जो भविष्य के दो और भव देखे गए हैं कि यह देवगति में जाएगा, फिर मनुष्य होगा, तो जब भविष्य निश्चित है तो उस भविष्य के अनुसार ही जीव के भाव भी होंगे ही, हम उन भावों को सच में बदल नहीं सकते।

परमार्थ से कोई भी भावों को बदल सकने में सक्षम नहीं है, यदि हम ऐसा माने कि हम भावों में फेरबदल कर सकते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान के ज्ञान और उनके प्रभामण्डल में देखे गए भवों को भी हम बदल सकते हैं जो कि संभव ही नहीं है। अत: हमें यह सत्य स्वीकार करना ही चाहिए कि यदि किसी बालक को डॉक्टर या इंजीनियर या सी.ए. बनना है या विदेश जाना है, विवाहित जीवन जीना

Created by Universal Document Converter

है या ब्रह्मचारी या मुनिराज बनना है जो भी भविष्य है तदनुसार ही उसके भाव भी पहले से होने ही लगेंगे। यह अलग बात है कि हमें उसके न तो भविष्य का पता है और न भावों का, हमें उन भावों में कौन प्रेरक/निमित्त बनेगा यह पता नहीं है तो हम ऐसा समझते हैं कि मैंने या किन्हीं गुरुजी, दादाजी या पिताजी ने प्रेरणा दी कि बेटा तुम इंजीनियर बन जाओ, डॉक्टर बन जाओ, किसी प्रवचनकार ने प्रेरणा दी कि तुम शास्त्री कर लो इसलिए वह डॉक्टर, इंजीनियर या शास्त्री हो गया; परन्तु सच्चाई यह है कि जिसे शास्त्री होना है उसे शास्त्री होने के पहले शास्त्री महाविद्यालय में प्रवेश लेने का भाव होगा और उस भाव के होने में कोई उपदेश, प्रेरक निमित्त भी होगा इस तरह एक कार्य में पाँचों समवाय (स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, भवितव्यता या होनहार और निमित्त) अथवा उपादान और निमित्त दोनों कारण होंगे ही। कभी भी मात्र उपादान से कार्य नहीं होता, न ही निमित्त से होता है; परन्तु कार्य उपादान में और उपादान जैसा ही होता है, निमित्त वहाँ अवश्य ही उपस्थित रहता है।

इस तरह यदि हम सच में यह स्वीकार करें कि जैसा भविष्य होना है वैसे ही भाव होंगे। जैसे – किसी को करोड़पति बनना है तो उसे व्यापार चलाने, उद्योग खोलने, विदेश जाने आदि के भाव भी होंगे। जिसे इंजीनियर, डॉक्टर, कलेक्टर बनना है, उसे 12 घंटे-14 घंटे पढ़ाई करने के भाव भी होंगे ही, जिसे बर्बाद होना है, जिसके जीवन में दुर्घटना होना है उसके जीवन में प्रमाद और लापरवाही के भाव व क्रिया भी होगी।

इस तरह हम 'जैसा भविष्य, वैसे भाव' विचार कर प्रमादी न होते हुए निर्भार और निर्भय हो सकते हैं। सम्पूर्ण जिनागम हमें निर्भार और निर्भय करते हुए प्रमाद रहित, यत्नाचार पूर्वक जीवन जीने का सन्देश देता है, अकर्तृत्व का भाव जागृत कर अर्थात् ज्ञातृत्व का भाव जागृत कर

Created by Universal Document Converter

'हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम।' 'होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम' की भावना को बढ़ाने के लिए है। शान्ति, समता, समन्वय, समर्पण, सरलता का जीवन जीने के लिए है। जिनवाणी का कोई भी सन्देश चाहे व्यवहार नय से कहा गया हो या निश्चय नय से, वह कर्ता बनने अथवा प्रमादी होकर स्वच्छन्दी होने के लिए नहीं है। हम किसी भी जीव के औदयिक भावों को देखकर ये सब भाव गुणस्थान के अनुसार होंगे ही ऐसा विचार कर समता धारण कर सकते हैं।

हमें आगम के कथनों को बदलना नहीं है, समझना है; अतः परमार्थ से तो यह कथन स्वीकार करने योग्य है कि 'जैसा भविष्य, वैसे भाव।'

❀❀❀

## जमाना

कर्मोदय से कभी भरता व खाली होता है खज़ाना।
जिनकी छाया को भी तरसते थे, उनसे ही डरने लगा ज़माना।।
जिनके मिलने से शुभ शकुन का होता था अहसास।
आज उनके ही मिलने पर मुँह फेर, हँसता है ज़माना।।
जिसने उगाया था बगीचा, सबकी खुशी के लिये।
बेदखल उसको ही, करता है ये बेदर्द ज़माना।।
सुबह होंगे राजा राम, थी सबको खुशी व इंतजार।
शाम समय वन जाते, देख रहा था ये ज़माना।।
सती सीता, अंजना का था नहीं कुछ दोष?
कर्मोदय से भटकीं, बस देखता रहा खुदगर्ज ज़माना।।
प्रतिपल बदलते उदय का विश्वास न कर।
है आज तेरा, कल और का होगा ये जमाना।।
पल-पल बदले मनस्थिति, लगा है आना-जाना।
मैं त्रिकाल ज्ञायक मुझको क्या बदले ये कमजोर जमाना।।

Created by Universal Document Converter

परिशिष्ट-2

# स्वात्मालोचन

*('हरिगीतिका' छन्द)*

गतराग अरु सर्वज्ञ हैं, घनघाति कर्म विमुक्त हैं।
सर्वोदयी संदेश 'जिन' का, चरण में हम विनत हैं।।
वसु कर्म नष्ट हुए हैं जिनके, हुआ सुक्ख अपार है।
उन ध्रुव-अचल श्री सिद्ध-प्रभु को, वंदना शतबार है।।1।।

विषय-आशा-रहित हैं, निज-आत्म में जो निरत हैं।
वे सूरि-पाठक-साधु सब, आरंभ-परिग्रह-रहित हैं।।
ऋषभादि 'तीर्थंकर' प्रभु को, भाव से वंदन करूँ।
निर्दोष होने अति-विनय से, दोष मैं निज उच्चरूँ।।2।।

'अज्ञता' मेरी प्रभो! मैं क्या कहूँ? कैसे कहूँ?
कर्तृत्व और ममत्व के वश, घोर दुख क्यों ना सहूँ?
न्याय-नीति-जिन वचन की, बात मैं मुख से करूँ।
पर मैं स्वयं सन्मार्ग पर, चलता नहीं कैसे कहूँ?।।3।।

परवस्तु को 'निज-वस्तु' कहकर, सदा अतिक्रम ही किया।
अन्य से भरपूर लेकर, कण नहीं पर को दिया।।
निर्माल्य-भक्षण मैं किया प्रभु, जो महा-अघरूप है।
नर-नारि-तन पर हुआ मोहित, जो महा दुखकूप है।।4।।

स्वाद-लोलुप हो प्रभो! मैं, भक्ष्याभक्ष्य सभी चखा।
विषय-लोभी ही रहा मैं, नहीं संयम धर सका।।
मैं पिता होकर प्रभो, ना तनय संस्कारित किये।
पुत्र होकर जन्म-दाता, को न सेवा-फल दिये।।5।।

Created by Universal Document Converter

'धर्म पत्नी' बन प्रभो, मैं धर्म से ही च्युत किया।
मैं दुराचारी रहा, अर्धांगिनी चाही सिया।।
परिजनों के मध्य रहकर, न किया सत्कर्म को।
अधिकार ही चाहा सदा, समझा नहीं कर्त्तव्य को।।6।।

जग में बड़प्पन को दिखाने, दान मैं देता रहा।
पद-प्रतिष्ठा-यश मिले, दिन रात चिंतन में रहा।।
इसके लिए निर्लज्ज हो, गुणगान सबके ही किये।
लोभ में बनकर 'सरल', कटु वचन भी सबके सहे।।7।।

अपशब्द कहकर मैं सभी को, कष्ट ही देता रहा।
क्रोध-मद में अंध हो, अपमान ही करता रहा।।
'कर्त्ता नहीं, सब जीव ज्ञाता', सबको समझाता फिरूँ।
वर्कृत्व के कर्त्तृत्व में, उन्नत वदन जग में रहूँ।।8।।

गुरु-नाम का 'अपलाप' कर, निज-नाम को ऊँचा किया।
कर्तृत्व था जो अन्य का, उसको कहा 'मैंने किया'।।
मैं पाप करता रात-दिन पर, पुण्य फल चाहूँ सदा।
समता-समर्पण-समन्वय के, भाव न होते कदा।।9।।

विषय-भोगों की कथा ही, मैं सदा सुनता रहा।
निज आत्मा की वार्त्ता को, मैंने नहीं सुनना चहा।।
जो दोष अष्टादश-सहित अरु, रूप विविध धरे अरे!
मोहित-मती मेरी रही, जो पूज्य पद उनको कहे।।10।।

जिनदेव अरु जिनधर्म पाकर, आत्मा जाना नहीं।
'मैं स्वयं हूँ सिद्ध-सम', यह कभी माना नहीं।।
स्व-पर-हितकर जिन-वचन का, नहीं सेवन मैं किया।
मोह-नाशक जिन-वचन पा, मोह संवर्धन किया।।11।।

Created by Universal Document Converter

नियत अरु व्यवहार-नय में, एकांत का ही पक्ष ले।
एक को करके ग्रहण, मैं तजा दूजा दोष दे।।
द्विविध वस्तु है नहीं, बस कथन द्विविध प्रकार है।
जिनवच-रहस समझा नहीं, नरदेह की यह हार है।।12।।

व्यवहार-नय के कथन से, कर्तृत्व का पोषण किया।
स्वच्छंद होकर स्वमति से, परमार्थ को दूषित किया।।
तन में सदा एकत्व कर, पर में किया ममकार है।
निज-विभव भूला हे प्रभो! मैं सहा दुक्ख अपार है।।13।।

मैं शुभाशुभ-भावमय, माना यही मदमस्त हो।
सत्यपथ कैसे दिखे? जब ज्ञान-रवि ही अस्त हो।।
देव-गुरु-गुणगान कर, कहते सदा 'शुद्धात्मा'।
जिनवचन सुन, अनसुना कीना, रहा मैं बहिरात्मा।।14।।

सद्भाग्य जागा आज मेरा, देव! जिन दर्शन किये।
कर्ण मेरे हुए पावन, जिन-वचन अमृत पिये।।
जिनदेव कहते दिव्यध्वनि में, तुम शुभाशुभ-मुक्त हो।
रागी नहीं द्वेषी नहीं, न प्रमत्त अरु अप्रमत्त हो।।15।।

परमार्थ से तुम शुद्ध हो, अरु एक-दर्शन ज्ञानमय।
निज-आत्मा को जान-मानो, रमो निज में हो अभय।।
रस-रूप-गंध-रहित सदा, पर्याय से भी पार हो।
तुम हो अनूपम विश्व में, तुम मुक्तिश्री हिय हार हो।।16।।

हम हैं सभी शुद्धात्मा, कोई नहीं छोटा-बड़ा।
जो सिद्ध-सम निज को न देखे, वह भवोदधि में पड़ा।।
मैं सदा ज्ञायक-स्वभावी, अरु अनादि-अनंत हूँ।
मैं दीन-हीन नहीं प्रभो! मैं मुक्तिलक्ष्मी कंत हूँ।।17।।

Created by Universal Document Converter

वर्णादि से विरहित सदा, मेरा अहो चिद्रूप है।
निष्कर्म-निर्मम और निर्मल, ही सदा मम रूप है।।
निज-चतुष्टय न तजूँ, परसंग मैं करता नहीं।
अस्तित्व गुण के कारणे, मैं तो कभी मरता नहीं।।18।।

पर्याय-दृष्टि अब तजूँ, मैं लखूँ शुद्ध-स्वभाव को।
निज आत्मा में 'अहं' करके, छोड़ दूँ परभाव को।।
पर्याय में एकत्व ही, सबसे बड़ा मम दोष है।
शुद्धनय से सदा देखूँ, आत्मा निर्दोष है।।19।।

अब चलूँ मैं वीर-पथ पर, वीर बनने के लिए।
छोड़ दूँ दुष्कर्म सारे, अज्ञता में जो किये।।
निज-आत्मा को जानकर, निज में रमूँगा मैं प्रभो!
अज्ञता तज, विज्ञ हो, सर्वज्ञ पद पाऊँ विभो।।20।।

## यह भी इक दिन बदल जायेगा

पापोदय जब जिय का आता, भूख-प्यास से है चिल्लाता।
न भरपेट है भोजन पाता, रोजगार बिन है घबराता।।
रोगों से होता है नाता, प्रिय परिजन भी है ठुकराता।।
यश चाहे, पर अपयश पाता, इक क्षण को न दिखती साता।।
अरे मित्र! पर चिन्ता छोड़ो, समता से तुम नाता जोड़ो।
यह भी इक दिन बदल जायेगा।।

जब जिय का पुण्योदय आता, शत्रु भी निज गले लगाता।।
बिना किए ही यश-पद पाता, रोजगार बढ़ता ही जाता।।
सब बतलाते अपना नाता, लोहा भी सोना बन जाता।।
जो देखो सिर पर बिठलाता, स्वागत में माला पहनाता।।
भाग्योदय में न इठलाना, अहंकार का भाव न लाना।।
यह भी इक दिन बदल जायेगा।।

Created by Universal Document Converter

# निज-दोष-दर्शन

*('दोहा' छन्द)*

जिनवर-जिनवच-जिनगुरु, अरु तीर्थंकर-नाम।
भक्ति-भाव उर-धारकर, सादर करूँ प्रणाम।।1।।
हे प्रभु ! तुम निर्दोष हो, ज्ञान-दर्श-सुख पूर्ण।
तव पथ पर मैं भी चलूँ, करूँ दोष को चूर्ण।।2।।

*('वीर' छन्द)*

अनादिकाल से चतुर्गति में, मोह-राग-वश भ्रमण किये।
एकेंद्रिय से पंचेन्द्रिय-तन, धरकर विध-विध कष्ट सहे।।
जिन-वच में ही शंका धरकर, व्यर्थ विकल्प किए नाना।
हो स्वच्छंद पापों में रत हो, नरक-निगोद पड़ा जाना।।
जीवन-मरण, लाभ अरु हानि, हो जिस विधि प्रभु ने जाना।
पर-परिवर्तन करना चाहा, 'क्रमबद्ध' को ना माना।।
नरतन धरकर अज्ञदशा में, मैंने बहु-अपराध किये।
बचपन बीता खेलकूद में, नहीं ज्ञान-संस्कार लिये।।
यौवन पाकर हो मतवाला, विषयों में ही मस्त रहा।
धन-पद-यश पाने को उद्यत, आतम-हित में सुस्त रहा।।
वीतराग को नमस्कार कर, राग-सहित पूजे मैंने।
जैनाचार को दे तिलांजलि, भ्रष्टाचार किया मैंने।।
चल-चित्रों के विकट-जाल, अरु धारावाहिक में उलझा।
नायक-खलनायक सब नाटक, सत्य-स्वरूप नहीं समझा।।
उनको निज-आदर्श बनाकर, राग-द्वेष किए मैंने।
नाच-गान अरु फैशन में फँस, जीवन व्यर्थ किया मैंने।।
सर्च किया 'गूगल' पर 'सब कुछ', जिनवाणी को ना देखा।
मोबाइल से करी मित्रता, किया न भावों का लेखा।।

Created by Universal Document Converter

बाजारों के भावों में फँस, निज-स्वभाव को ना जाना।
लोभ के वश हो योग्यायोग्य-वणिज कीना है मनमाना।।

तत्त्वज्ञान के ही अभाव में, मंत्र-तंत्र में उलझ गया।
सुख-दुःख मिलता निज-कर्मों से, जिन-वच को मैं भूल गया।।
राष्ट्र-समाज-अहित करके भी, निज-हित ही साधा मैंने।
ध्वनि-जल-वायु प्रदूषित करके, जीवों को मारा मैंने।।

नल के जल को छाना मैंने, रोगाणु से बचने को।
'जीवाणी' ना विधि से कीनी, मरें जीव तो मरने दो।।
व्यर्थ चलाकर पंखा-कूलर, जीवों का बहुघात किया।
ए.सी.-फ्रिज अरु हीटर-गीजर, चला-चला कर पाप लिया।।

गैस-जलाकर, बातों में लग, व्यर्थ ही आग जलाई है।
मानों निज-हाथों से मैंने, सुख में आग लगाई है।।
जमीकंद अरु मद्य-मधु का, भी सेवन मैंने कीना।
पंच-इंद्रिय के सुख पाने को, जीवन 'त्रस' का भी छीना।।

बिन छाने जल से मशीन में, मैंने कपड़े धोये हैं।
होटल में भोजन कर-करके, बीज पाप के बोये हैं।।
द्विदल-सेवन, उपवन-भोजन, करके 'त्रस' का घात किया।
चर्म, सिल्क अरु चर्बी-निर्मित, वस्तु का उपभोग किया।।

निशि में भोजन-पूजन-फेरे, किये कराये हैं मैंने।
आतिशबाजी अरु डी.जे. से, सुख से नहीं दिया जीने।।
बहु प्रकार से हे प्रभु! मैंने, अगणित कीने हैं अपराध।
हों अपराध क्षमा सब मेरे, सादर झुका रहा हूँ माथ।।

हे प्रभु ! अब मैं कुछ ना चाहूँ, देव-शास्त्र-गुरु-शरण मिले।
जिन-दर्शन से निज-दर्शन हो, उर में समकित-सुमन खिले।।
आप ही हो आदर्श हमारे, तव पथ पर चलना चाहूँ।
दोषों का प्रक्षालन करके, तुम-सम ही बनना चाहूँ।।

Created by Universal Document Converter

# लेखक द्वारा लिखित प्रकाशित साहित्य

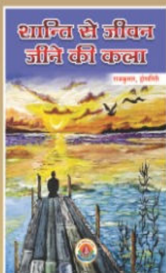

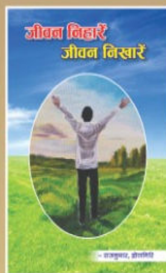

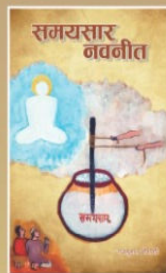

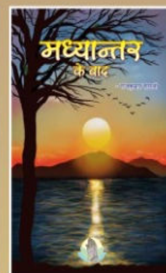

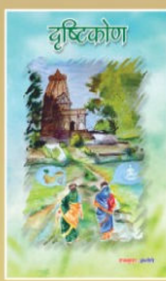

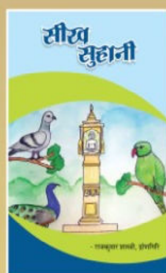

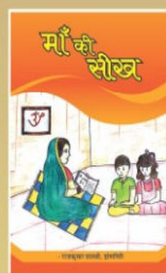

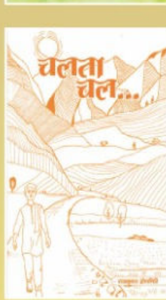

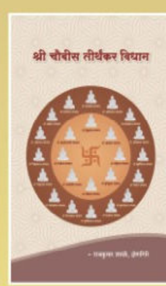


# लेखक का अप्रकाशित साहित्य

Created by Universal Document Converter

# संस्कार सुधा मासिक के विशेषांक

Created by Universal Document Converter